विषय-सूची

★

वक्तव्य

साहित्य-संस्थान राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर विगत २१ वर्षों से उदयपुर और राजस्थान में साहित्यिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक कलात्मक सामग्री एवं शिलालेखों की शोध खोज, संग्रह, संपादन और प्रकाशन कार्य करता आ रहा है। विशेषकर साहित्य-संस्थान ने राजस्थान में यत्र तत्र बिखरे हुए प्राचीन साहित्य, लोक-साहित्य, इतिहास पुरातत्व और कला विषयक वस्तुओं को प्राप्त करने के लिये निरन्तर प्रयत्न किया है। परिणाम स्वरूप लगभग ४० महत्त्वपूर्ण और उपयोगी ग्रन्थों का प्रकाशन होचुका है। साहित्य-संस्थान के अन्तर्गत निम्न लिखित विभाग गतिशील हैं—

(१) प्राचीन साहित्य-विभाग,
(२) लोक साहित्य-विभाग,
(३) इतिहास पुरातत्व-विभाग,
(४) अनुसन्धान पुस्तकालय एवं अध्ययन गृह,
(५) संग्रहालय-विभाग,
(६) राजस्थानी प्राचीन साहित्य-विभाग,
(७) पृथ्वीराज रासो एवं राणा रासो-सम्पादन संशोधन विभाग
(८) भील साहित्य-संग्रह-विभाग,
(९) नव साहित्य-सृजन-विभाग,
(१०) संस्थानीय मुख पत्रिका-'शोध पत्रिका' संपादन विभाग,

(११) संस्कृत-'राज प्रशस्ति' ऐतिहासिक महाकाव्य सम्पादन विभाग,
(१२) प्राचीन कला प्रदर्शनी विभाग,

इनके अतिरिक्त 'सामान्य विभाग' के अन्तर्गत अन्यान्य कई प्रवृत्तियाँ चलती रहती हैं. उनमें मुख्य २ ये हैं:—

(१) महाकवि सूर्यमल आसन' भाषण माला
(२) म० म० डा० गौरीशंकर 'ओझा आसन ,,
(३) उपन्यास सम्राट् 'प्रेमचन्द आसन' ,,
(४) निबन्ध-प्रतियोगिताएँ
(५) भाषण प्रति योगिताएँ,
(६) कवि सम्मेलन
(७) साहित्यकारों एवं महाकवियों के जयन्ति-समारोह ।

इस प्रकार साहित्य-संस्थान, राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर अपने सीमित और अत्यल्प साधनों से राजस्थानी साहित्य, संस्कृति और इतिहास के क्षेत्रों में विभिन्न विघ्न बाधाओं के होते हुए भी निरन्तर प्रगतिक कार्य कर रहा है। राजस्थान के गौरव-गरिमा की महिमामयी झाँकी अतीत के पृष्ठों में अंकित है; पर आवश्यकता है. इसके पृष्ठों को खोलने की। साहित्य-संस्थान नम्रता के साथ इसी ओर अग्रसर है और प्रस्तुत पुस्तक साहित्य-संस्थान के तत्वावधान में तैयार करवाई गई है।

साहित्य-संस्थान के संग्राहकों ने अनेक स्थानों में घूम घूम और ढूँढ ढूँढ कर २०००० के लगभग छन्दों का और प्राचीन हस्त लिखित अनेक उपयोगी ग्रंथों का भी संग्रह किया है। इनमें विविध प्रकार के प्राचीन छन्द सुरक्षित हैं। विभिन्न प्रकार की ऐतिहासिक घटनाओं एवं व्यक्तियों आदि का वर्णन मिलता है। ये विभिन्न प्रकार के गीत और छन्द लाखों की संख्या में राजस्थान के नगरों, कस्बों एव गाँवों में बिखरे

पड़े हुए हैं। इनके प्रकाशन से एक ओर साहित्यकारों को राजस्थानी साहित्य का परिचय मिल सकेगा, तो दूसरी ओर इतिहास सम्बन्धी घटनाओं पर भी प्रकाश पड़ेगा। साहित्य-संस्थान राजस्थान में पहली संस्था है, जो शोध-खोज के क्षेत्र में नियमित काम करती चली आरही है।

इस प्रकार के संग्रह अब तक कई निकाले जासकते थे; किन्तु साधन सुविधाओं के अभाव में साहित्य-संस्थान विवश था। इस वर्ष प्राचीन राजस्थानी साहित्य और लोक साहित्य के प्रकाशनार्थ भारत सरकार के शिक्षा-विकास सचिवालय ने साहित्य-संस्थान के लिये कृपा कर ५७,०००) सत्तावन हजार रुपयों की योजना स्वीकार की है। इसी योजना के अन्तर्गत प्रस्तुत पुस्तक का भी प्रकाशन कार्य सम्पन्न हो सका है। ऐसे २ उपयोगी कार्यों को प्रकाश में लाने के कारण हमारी सरकार के गौरव में ही वृद्धि हुई है।

इस सहायता को दिलाने में राजस्थान के मुख्य मन्त्री माननीय श्री मोहनलालजी सुखाड़िया और उनके शिक्षा सचिवालय के अधिकारियों का पूरा २ योग रहा है। इसके लिये हम उनके प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं। साथ ही भारत सरकार के उपशिक्षा सलाहकार डा० डी० पी० शुक्ला, डा० मान तथा श्री सोहनसिंह एम. ए. (लन्दन) के भी अत्यन्त आभारी हैं, जिन्होंने सहायता की रकम शीघ्र और समय पर दिलवा दी। सच तो यह है कि उक्त महानुभावों की प्रेरणा और सहायता से ही यह रकम मिल सकी है और संस्थान अपने ग्रन्थों का प्रकाशन करवा सका है। भारत सरकार के राज्यशिक्षा मन्त्री डा० कालूलालजी श्रीमाली के प्रति किन शब्दों में कृतज्ञता प्रकट की जाय? यह तो उन्हीं का अपना कार्य है। उनके सुझाव और उनकी प्रेरणा से संस्थान के प्रत्येक कार्य में निरन्तर विकास और विस्तार होता रहा है और

भविष्य में भी होता ही रहेगा। इसी आशा और विश्वास के साथ हम उनका हृदय से आभार मानते हैं।

हमें विश्वास है कि हमारी भारत सरकार एवं राजस्थान सरकार इसी प्रकार साहित्य-संस्थान की प्रवृत्तियों के लिये सहायता एवं सहयोग देकर हमारे उत्साह को बढ़ाती रहेंगी, जिससे इस महान् देश की सांस्कृतिक प्राणभूत प्रवृत्तियों के द्वारा राष्ट्रीय चिर स्थायी कार्य किये जासकें।

हम उन सब सज्जनों और विद्वानों के भी आभारी हैं, जिन्होंने इस कार्य के संकलन, सम्पादन और संशोधन में सहयोग एवं सहायता दी है।

विनीत	विनीत
मोहनलाल व्यास शास्त्री	**भगवतीलाल भट्ट**
मंत्री	अध्यक्ष
साहित्य-संस्थान	साहित्य-संस्थान

भूमिका

राजपूताना विश्वविद्यालय की पी० एच० डी० के लिए डिंगल साहित्य का अध्ययन करना था, प्रयत्न करने पर भी एक साथ राजस्थानी साहित्य के विभिन्न रूपों और स्तरों के उदाहरण नहीं मिले। फलस्वरूप मैंने नये सिरे से राजस्थानी के प्रमुख कवियों का अध्ययन करना शुरु किया। सोचा था उससे भी अधिक दुरूह यह काम सिद्ध हुआ! राजस्थानी की अधिकांश रचनायें अप्रकाशित अथवा अनुपलब्ध हैं। इन्हें खोजना और मिल जाने पर इन्हें पढ़ने के लिए प्राप्त करना बहुत मुश्किल कार्य रहा। मैंने लगभग ४५ कवियों की रचनायें—उनकी जो मेरी दृष्टि में महत्वपूर्ण थे, प्राप्त करने और पढ़ने की कोशिश की। पिछले पांच वर्षों के अनवरत प्रयत्न के फलस्वरूप मुझे आंशिक सफलता मिली। जोधपुर, उदयपुर, नागौर, जालौर, पाटण जामनगर, अहमदाबाद, जैसलमेर तथा इधर उधर बिखरी हुई अनेक स्थानों की हस्तलिखित सामग्री प्राप्त की। भावनगर के जयेन्द्रभाई त्रिवेदी और जामनगर के डा० दुष्यन्त पंड्या के सहयोग से भी कुछ अप्राप्य ग्रंथ मिले। दरबार गोपालदास महाविद्यालय अलीआंबाड़ा, आनंदीबाई ज्ञानभंडार जामनगर और गुजरात विद्यासभा, अहमदाबाद के अधिकारियों का लेखक आभारी है, जिनके सहयोग और उदारता से मुझे काफी साहित्य प्राप्त हुआ। इस सब अध्ययन के फलस्वरूप राजस्थानी साहित्य के विकास की रूपरेखा अधिक स्पष्ट हो उठी। अपने इस प्रयत्न के दौरान मैंने उदाहरण के रूप में प्रकीर्ण रचनायें भी नोंध ली। इन्हीं कवियों

प्रस्तावना

राजस्थानी जैन साहित्य

राजस्थानी साहित्य के विकास में जैन विद्वानों की सेवायें कभी भुलाई नहीं जा सकतीं। जैनों ने भाषा साहित्य की नानाविध सेवा की है। अनेक जैन मुनि, यति आचार्य और श्रावकगण विद्याव्यसनी हुये हैं। जिन्होंने नियमित रूप से जीवन पर्यन्त अध्ययन किया है। वे नाना भाषाओं के अच्छे जानकार और अनेक विषयों के ज्ञाता रहे हैं। इन विद्वानों ने बहुविध प्रकार से मौलिक साहित्य सर्जना की है। मां भारती की वेदी पर अपनी साधना के आराधना पुष्प चढ़ाये हैं। प्राचीनतम राजस्थानी गद्य और पद्य के नमूने भी हमें जैन साहित्य में उपलब्ध होते हैं। अतः जहाँ तक राजस्थानी जैन साहित्य का समुचित अध्ययन नहीं किया जायेगा, तब तक राजस्थानी भाषा का वैज्ञानिक इतिहास भी निर्मित नहीं किया जा सकता। जैन साहित्य की उपेक्षा साम्प्रदायिक साहित्य-विशेष कह कर नहीं की जा सकती। ऐसा करने से हम बहुत बड़ी हानि उठायेंगे। कारण स्पष्ट है। राजस्थानी जैन साहित्य विषय विविधता, शैली, परिमाण, स्तर सभी दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। एक बात और भी है। जैन मुनियों का लक्ष्य अपने विचारों को जनसमुदाय तक पहुँचाने का था, और ऐसा करने में उन्होंने जनसाधारण की भाषा का आश्रय लिया। अतः जहाँ राजस्थानी जैन साहित्य एक ओर प्राकृत-अपभ्रंश की साहित्य विरासत का अधिकारी

है, वहां दूसरी ओर वह जनभाषा के बोलचाल के उदाहरण प्रस्तुत करता है और लौकिक साहित्य का स्वरूप ग्रहण कर लेता है। इस द्विविध विशेषता के कारण जैन साहित्य का अध्ययन राजस्थानी भाषा और साहित्य को समझने के लिये अनिवार्य है।

जैनों के द्वारा केवल साहित्य की रचना ही नहीं हुई, अपितु साहित्य को संरक्षण भी मिला। प्राचीन भारतीय साहित्य की सुरक्षा का जितना श्रेय जैन धर्मावलम्बियों को है, उतना किसी अन्य वर्ग विशेष का नहीं दिया जा सकता। जैनों ने राजनैतिक अस्थिरता उथलपुथल के युग में दुर्दान्त आक्रमणकारियों से साहित्य को नष्ट होने से बचाया, उन्होंने अपने ज्ञान भंडारों में संग्रहित करने के लिए अनेक ग्रंथों की प्रतिलिपियों का और करवाई, और जैन ही नहीं अनेक अजैन ग्रंथों को भी अपना संरक्षण प्रदान किया। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्राचीन भारतीय साहित्य के संरक्षण और संवर्धन में जैनों का महत्व का योगदान रहा है।

राजस्थानी जैन साहित्य विस्तार में बहुत बड़ा है और भाषाशास्त्र, तत्कालीन सांस्कृतिक इतिहास और विषयवैविध्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। जैन साहित्य गद्य और पद्य दोनों में प्राप्त होता है। यद्यपि जैन साहित्य के सृजन की मूलभूत प्रेरणा धार्मिक श्रद्धा और आध्यात्मिक निष्ठा रही है, तथापि साहित्यिक दृष्टि से भी उसे सर्वथा उपेक्षा की दृष्टि से नहीं देखा जा सकता है। जैन साहित्य में कथा-साहित्य, मुक्तक, गेय पद, टीकाएँ सभी कुछ मिलता है, फिर भी कथा-साहित्य का परिमाण विशाल है, गद्य भी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होता है। जैन साहित्य को काव्य-रूपों की दृष्टि से इस प्रकार विभाजित किया जा सकता है।

(१) प्रबंध और कथाकाव्य–प्रबन्ध, चरित, कथा, रास, रासा भास, चौपई आदि अनेक रूपों में जैन प्रबन्ध काव्य लिखे गये हैं। राजस्थानी में विभिन्न तीर्थंकरों, बलदेवों, वासुदेवों तथा धर्मप्राण श्रेष्ठियों को लेकर ऐसी रचनायें बहुत बड़ी संख्या में प्राप्त होती हैं। यही नहीं जनता में प्रचलित अनेक लोक कथानकों को जैन कवियों ने ढाला है। ऐसी रचनायें बड़ी लोकप्रिय रही हैं।

(२) ऋतुकाव्य–फाग बारहमासा, चौमासा, चौमासा आदि नामों से पाये जाने वाले काव्य ग्रथ वस्तुतः भारतीय काव्य परम्परा के विशेष सूत्र हैं, जो लोकसाहित्य सी तरलता, हृदय-प्रक्षालन-क्षमता और सरलता रखते हैं, दूसरी ओर जो सुदीर्घ काव्य रूढियों के उत्तराधिकारी भी हैं। फाग में वसन्त के सौन्दर्य का और तरुण-तरुणियों का उल्लास का स्वर व्यक्त हो उठता है।

(३) मुक्तक काव्य–दूहा, गीत, धवल, गज़ल आदि काव्यरूप मुक्तक कोटि में गिने जायेंगे। दूहा तो राजस्थानी का अति लाड़ला छंद है। वस्तु निर्देश का दृष्टि से विविधता रखता है। गीत, धवल, गज़ल आदि रूपों का गेय स्वरूप स्पष्ट है। धार्मिक भावना से अनुप्राणित होकर, उपदेश और ज्ञान जन साधारण तक पहुँचाने की दृष्टि से अथवा तीर्थों व शहरों के वर्णन के उद्देश्य से इन गेय काव्य-रूपों की रचना होती रही। श्री रावल सारस्वत के शब्दों में यदि जैन भण्डारों का उचित पर्यवेक्षण किया जाय तो हजारों की संख्या में ऐसे गीत मिल सकते हैं, जो हिन्दी संसार में सूरसागर और रामचरित मानस के मधुर से मधुर पदों की समानता का दावा कर सकते हैं। इन गीतों में पाई जाने वाली भक्ति संयोग और वियोग

की कल्पनाएँ भारतीय साहित्य की चिरकल्पित निधियाँ होकर भी मौलिकता से ओतप्रोत हैं। राजस्थानी भाषा के गीतों का तो सर्वस्व ही नवीन है, सरस है, सुन्दर है और अल्हादकारी है।

(४) संवाद, मातृका-बावनी, ककहरा, स्तवन, सज्झाय आदि काव्यस्वरूप पूर्णतः धार्मिक पीठिका पर स्थापित रहे। साहित्य की दृष्टि से इन्हें अधिक महत्व भले ही न दिया जा सकता हो, किन्तु आध्यात्मिक दृष्टि से इनका महत्व असंदिग्ध है।

(५) पट्टावली, गुर्वावली, वही, दफ्तर, पत्र, विज्ञप्तिपत्र–ये सब इतिहास की दृष्टि से महत्त्व रखते हैं।

(६) बालावबोध, टब्बा, टीकाएँ आदि व्याख्या साहित्य के अन्तर्गत ग्रहण किये जा सकते हैं।

(७) साम्प्रदायिक और उपासना साहित्य–मात्र भाषाशास्त्र की दृष्टि से महत्व रखता है।

प्रबन्ध या कथाकाव्यों में हमें जैन और अजैन दोनों प्रकार के ग्रन्थ जैन कवियों द्वारा रचित मिल जाते हैं। अद्यावधि प्राप्त जानकारी के अनुसार वज्रसेन सूरि रचित 'भरतेश्वर-बाहुबलिघोर' राजस्थानी की प्राचीनतम रचना है। शालिभद्र सूरि को राजस्थानी का प्रथम महत्वपूर्ण जैन कवि माना जा सकता है। सं० १२४१ में उसने 'भरत बाहुबलि रास' नामक खंड काव्य लिखा जो मुनि जिनविजय जी द्वारा संपादित होकर प्रकाशित हो चुका है। तब से मध्ययुग के अंत तक जैन कवि परम्परागत रूप से रास, आदि काव्य लिखते रहे। जैसा कि हम पहले बता चुके हैं जैनेतर परम्परा में भी जैन कवियों का महत्व का योग दान रहा है। 'राजस्थानी जैनसाहित्य में भी ऐसे अनेक ग्रंथ हैं,

हैं, जो जैनधर्म के किसी भी विषय से संबंधित न होकर सर्वजनोपयोगी दृष्टि से लिखे गये हैं। उदाहरणार्थ दो चार ग्रंथों का निर्देश ही यहाँ काफी होगा। कवि दलपत विजय ने 'खुमाण-रासो' नामक ग्रन्थ रचा। उदयपुर के महाराणाओं का यथाश्रुत इतिवृत्त संकलित है। इसी प्रकार हेमरत्न और लब्धोदय आदि ने गोरा-बादल' और 'पद्मावती' आख्यान पर रास बनाये हैं, जो कि सबके लिए समान उपयोगी हैं।[1] जैन कवि कुशल लाभ की 'ढोला मारू-चउपई' तो ऐसी ही प्रख्यात रचना है। 'माधवानल कामकंदला' उनका अन्य प्रेमाख्यान है। उन्होंने तो 'पिंगल शिरोमणि' नामक रीति ग्रंथ भी बनाया। सोमसुन्दर कृत 'एकादशी कथा' विद्या कुशल और चारित्रधर्म कृत 'रामायण' ऐसी ही अजैन परम्परा की रचनायें हैं।

सं० १३८५ के लगभग विनयचन्द्र रचित' नेमिनाथ चउपई' मिलती है जो विरह प्रधान बारहमासा काव्य है। जिनपद्म कृत 'स्थूलिभद्र फाग', सोमसुन्दर का 'नेमिनाथ-नवरस-फाग और सोनीराम कृत 'वसंत-विलास' अन्य उल्लेखनीय रचनायें हैं। ये सभी ऋतु काव्य हैं और साहित्यिक रूढियों तथा लोकमानस की भावनाओं, दोनों का समन्वय करते चलते हैं। सबसे प्राचीन बारहमासा जिनधर्मसूरि 'बारह नांवउ' है।

१८ वी शताब्दी में जसराज उर्फ जिनहर्ष एक अच्छे दोहा-कार हो गये हैं। जसराज के प्रेम और शृंगार संबंधी दोहे अच्छी ख्याति पा सके। अन्य दोहाकार उदयराज की देन भी गणनीय है। इनके ५०० से ऊपर सुन्दर दोहे उपलब्ध हैं। दोहा तो राजस्थानी का सबसे

---

१. अगरचंदजी नाहटा—शोधपत्रिका-भाग ५ अंक ४ पृ० ३९.

लोकप्रिय छंद रहा है अतः अनेक कवियों ने इस छंद का उपयोग किया। इसीप्रकार गज़ल संज्ञक रचनाओं की संख्या सैकड़ों पर होगी। जिन जिन स्थानों पर जैन यति, मुनि विहार करते, वहाँ का वर्णन वे ऐसी ही गजलों के द्वारा करते थे। इस संबंध में अधिक सूचना व उदाहरणों के लिए 'राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज-दूसरा भाग' के पृष्ठ ६१ से ११६ तक देखे जा सकते हैं।

हम जिक्र कर चुके हैं कि 'संवाद' शीर्षक रचनाओं का आधार बहुधा धार्मिक रहा है। पर अनेक रचनाओं का असाम्प्रदायिक-रूप स्पष्ट है। अनेक संवाद संज्ञक रचनायें उनके रचयिताओं की चतुराई वाग्विदग्धता की घोषणा करती जान पड़ती हैं। 'जीभ-दाँत सम्वाद', 'लोचन-काजल संवाद', उद्यम-कर्म संवाद' अपने नाम से हमें अपना परिचय दे देते हैं। स्तवन तथा सज्झाय (स्वाध्याय) का स्वरूप आराधना का ही रहा। बावनी-साहित्य नैतिक रहा है।

विभिन्न आचार्यों को अपने नगरों में आमंत्रित करने के लिए श्रावक लोग अपने नगर का सचित्र विवरण लिखवा भेजते थे। विज्ञप्ति पत्र तत्कालीन भूगोल व इतिहास के प्रामाणिक श्रोत हैं। जैन गच्छों की पट्टावलियाँ भी राजस्थानी भाषा में लिखी जाती रही हैं, और इस दृष्टि से भाषाशास्त्री के लिए बहुत उपयोगी हैं।

व्याकरण, छन्द आदि की उपयुक्त शिक्षा देने के इरादे से बालावबोध जैसी रचनाओं का प्रणयन हुआ है। संग्रामसिंह कृत बाल-शिक्षा ऐसा ही एक महत्वपूर्ण ग्रंथ है। टब्बा भी टीका का ही रूप है। बालावबोध टीकाओं में मूल के अर्थ की व्याख्या के सा थसाथ विषय को स्पष्ट करने के लिए प्रासंगिक कथाओं को भी ग्रथित किया जाता रहा है। कथायें राजस्थानी गद्य के सुन्दर व प्रामाणिक उदाहरण

है। टीकायें सभी प्रकार के और सभी विषयों के काव्य ग्रंथों की लिखी गई हैं। साम्प्रदायिक अथवा लौकिक सभी प्रकार के काव्य यह सौभाग्य पासके हैं। वैद्यक में 'माधवनिदान टब्बा' 'पथ्यापथ्य टब्बा' ऐसे ही उदाहरण हैं। अन्य लौकिक टीकाओं के अंतर्गत 'चाणक्य नीति टब्बा' 'भर्तृहरिशतक भाषा टीका' आदि भी गिने जा सकते हैं। जैनधर्म के ग्रंथों की भी टीकायें लिखी गई, उनका अनुवाद किया गया। तेरा पंथी आचार्य जीतमलजी ने भगवतीसूत्र' जो परिमाण में ६० हजार श्लोक से अधिक है।

राजस्थान की लोकवार्ताओं को भी बहुत बड़े परिणाम में जैन लेखकों व कवियों द्वारा लिपीबद्ध किया गया है।

इस प्रचुर गद्य-पद्य मय साहित्य का विशेष अध्ययन करने की आवश्यकता है।

साम्प्रदायिक साहित्य पर यहाँ विचार नहीं करेंगे। वह केवल साहित्यिक दृष्टि से महत्व नहीं रखता। हाँ काव्य की पृष्ठभूमि समझने में वह सहायक हो सकता है।

जैनों द्वारा गद्य साहित्य-ख्यात, बात, कथा, वार्ता, दवावैत, आख्यान, वंशावलियाँ, वचनिका सभी कुछ लिखा गया है जिसे कि हम राजस्थानी गद्य के विकास पर विचार करते समय देखेंगे।

राजस्थानी संत साहित्यः—

राजस्थान न केवल सांसारिक प्रेमियों और ऐश्वर्यकामी वीरों की क्रीड़ास्थली रहा है, वरन् वह मुक्तिकामी और आध्यात्मिक प्रेमियों का कर्मक्षेत्र भी रहा है। बहुत प्राचीन समय से-सिद्धों के समय से तो निश्चित रूप से राजस्थान आध्यात्मिक हलचल का केन्द्र रहा है।

सिद्धों की साधना के कुछ विशिष्ट केन्द्र देश के विभिन्न भागों में थे, जिन्हें सिद्धपीठ कहा गया है। एक परम्परा के अनुसार जालन्धर, ओडियन, अर्बुद और पूर्णगिरी सिद्ध पीठ माने गये हैं ? अर्बुद राजस्थान का आबू ही है। राजस्थान का देहाती सामान्य जनता पर 'सिद्धों', नाथों व सतों का बहुविध प्रभाव रहा है। वामाचार से लेकर शुद्ध सतमत का किसी न किसी रूप में जनता में प्रचार रहा है और इन परम्पराओं को जीवन्त अथवा मृतप्राय रूपों में आज भी ढूंढा जा सकता है। अनेक बार सिद्धों और नाथों के विश्वासों, तंत्रविद्या और जीवन दर्शन का मेल भक्ति की भावनाओं और सतमत की निश्चल निष्ठा के साथ विचित्र रूप में हो गया है, जो अध्येता के लिए एक जटिल पहेली बन जाता है। यही नहीं अनेक ऐतिहासिक व्यक्तियों अथवा अर्द्ध ऐतिहासिक घटनाक्रमों को लेकर लोक में निजंधरी आख्यान और सिद्धियाँ प्रचलित हो गई हैं। ऐसे व्यक्तियों में पाबूजी, रामदेवजी, हड़बूजी, गोगाजी जांभाजी, मेहाजी, मल्लिनाथजी, जसनाथजी, तेजाजी बहुत प्रसिद्ध और लोकप्रिय हैं। इनमें से सभी महापुरुष, देवता और सिद्ध माने जाते रहे हैं। इनमें से अनेकों के 'सबद' या 'वाणी' मिलती है। सभी के भक्तों व अनुयायियों ने अपने इष्ट सत' के चमत्कारों व सिद्धियों को लेकर अनेक पद रचे हैं, जो आज भी अनेक गृहस्थियों, साधुओं, सन्यासियों, भोपों, जागियों, कीरतनियों और भक्तों के मजीरों, चिमटों, रावणहत्था, सारंगी, इकतारा, तंदूरा, धौलक, मड़ताल और झांझ पर सुने जा सकते हैं। ऐसा साहित्य मौखिक रूप में विपुल परिमाण में उपलब्ध है और संग्रह, सम्पादन और वैज्ञानिक अध्ययन की अपेक्षा रखता है।

राजस्थान में समय समय पर अनेक सम्प्रदायों व मतों की स्थापना होती रही है, जिसके फलस्वरूप विभिन्न मतावलम्बी संतों

द्वारा विपुल साहित्य रचा गया। इस समूचे साहित्य का मूल स्वर भारतीय संतमन की सामान्य चिन्ताधारा पर आधारित है। मुख्य विषय ईश्वर, जीव, माया, जीवन की नश्वरता, अभेद का तात्विक लोक-ग्राह्य निरूपण, धर्म और जाति के नामों की व्यर्थता, हठयोग, साधु जीवन, गुरु महिमा, सबद महिमा, मूर्तिपूजा-विरोध, पतित-प्रेम ओंकार जाप, उद्बोधन आदि ही हैं। जन साधारण पर आज भी इन संतों का बहुत प्रभाव है। संतों की पवित्र स्मृति में लगने वाले कई मेले अब तक चले आ रहे हैं। इन मेलों में दूर दूर से हजारों साधु और उपासक आते हैं। महाराजा मानसिंह, जोधपुर के कवि व धार्मिक नरेश ने तो नाथों को अपना गुरु मान लिया था। दादूपंथियों को जयपुर राज्य से आश्रय मिला था। इस प्रकार राज्याश्रय और जनाश्रय पाकर विभिन्न संतमत यहां फूले, फले। इसीलिए सन्तसाहित्य का जितना अच्छा संग्रह राजस्थान में है, उतना शायद ही अन्यत्र हो। इस समूचे साहित्य पर जो कुछ भी कहा जायेगा, तथ्यों और गवेषणा के अभाव में वह अधूरा ही रहेगा और ऐसी स्थिति में यहां राजस्थानी संत साहित्य पर विशेष न कहकर रूपरेखा देना ही समीचीन होगा।

जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, जोधपुर नरेश मानसिंह ने नाथों को अपना गुरु माना था। महाराजा स्वयं कवि थे और उन्होंने स्वयं 'नाथमत' के सिद्धों पर रचनायें लिखी हैं। यही नहीं, उनके आश्रित कवियों में से अधिकांश ने महाराजा की कृपाकांक्षा-हेतु नाथों व सिद्धों के विषय में रचनायें रचीं। सिद्धों व नाथ सम्प्रदाय विषयक ऐसी बहुत महत्व की सामग्री जोधपुर नरेश के हस्तलिखित ग्रंथालय 'पुस्तक प्रकाश' में है। साथ में सिद्धान्त-विषयक चित्रमालाएँ भी हैं। इस सब सामग्री का महत्व असंदिग्ध है।

बीकानेर प्रदेश के प्रसिद्ध सिद्ध जसनाथ और उनके शिष्यों द्वारा एक नया मार्ग चलाया गया। बीकानेर, जोधपुर और जैसलमेर में इनके अनेक अनुयायी हैं, जो जसनाथजी द्वारा बताए गये छत्तीस नियमों का बड़ी निष्ठापूर्वक पालन करते हैं। जसनाथजी रचित तीन ग्रंथ बताये जाते हैं—लगभग ५०० 'सबदियाँ' भी आद्यावधि प्राप्त हुई हैं। इनकी शिष्य परम्पराओं में अनेकों ने रचनायें की हैं जिनमें लालनाथ और सिद्ध देवनाथ का नाम उल्लेखनीय हैं। देवनाथजी के भी तीन ग्रंथ—गुणमाला, देसूटो, नारायण लीला उपलब्ध होते हैं। साथ में फुटकर छंद-सबद भी मिलते हैं। इस मत के मानने वाले आचरण की शुद्धता पर जोर देते हैं। जसनाथ जी से मिलता जुलता मत संत जम्भनाथ अथवा जम्भाजी का है। नागोर इलाके के एक गांव में सामान्य राजपूत के परिवार में इनका जन्म हुआ। इन्होंने अपने सेवकों व अनुयायियों को आचरण की पवित्रता, सचाई, अहिंसा आदि के संबंध में उनतीस आदेश दिये थे, जिनका पालन उनके मतावलम्बी आज भी आस्था और प्रसन्नता से करते हैं। उनका मत 'विश्नोई' कहलाता है। जम्भनाथ जी के अनेक पद मिले हैं, खोज करने पर विशेष साहित्य मिलने की भी सम्भावना है इनकी शिष्य परम्परा में दत्तनाथ मालदेव, पायजी आदि माने जाते हैं

संत लालदास के प्रभाव से अलवर राज्य की जनता, विशेष करके मेवों ने सात्विक जीवन बिताने का संकल्प किया और इसके फलस्वरूप संत लालदास के अनुयायी 'लालपंथी' या 'लालदासी पंथ' के कहलाये। संत लालदास की उपलब्ध वाणियों में हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य का व्यवहारिक रूप मिलता है। मेव यद्यपि मुसलमान होते हैं, पर लालदासी रीति-रिवाज, रहन-सहन, आचार-विचार में हिन्दुओं

उसे ही जान पड़ते हैं, लालदास ने सबसे अधिक ध्यान अंतःकरण की निर्मलता पर दिया है। कबीर पंथ और दादूपंथ की अनेक विशेषताएँ इस पंथ में दीख पड़ती हैं।

नाथों की परम्पराओं से विकसित सम्प्रदायों में निरंजनी सम्प्रदाय भी है। आचार्य क्षितिमोहन सेन इसे मूलतः उड़ीसा से फैला हुआ मानते हैं[1] और डा० बड़थ्वाल इसे नाथ सम्प्रदाय और निर्गुण सम्प्रदाय का मध्यवर्ती मानते हैं[2]। इस महत्वपूर्ण सम्प्रदाय का प्रचार राजस्थान में बहुत रहा और इसके बारह पदों अथवा थांबों में से अधिकांश राजस्थान में हैं। डीडवाणा इस सम्प्रदाय का सबसे बड़ा केन्द्र है। इनके एक मुख्य और अन्यतम आचार्य हरिदास निरंजनी हो गये हैं, जिनकी वाणी महत्व की है। इस सम्प्रदाय के साहित्य की महत्ता हमारे सांस्कृतिक इतिहास के लिए काफी हो सकती है।

रामसनेही पंथ भी साहित्य की दृष्टि से महत्व का माना जा सकता है। राजस्थान में रामसनेहियों के तीन केन्द्र हैं–शाहपुरा, रैण और खेड़ापा। इन तीनों स्थानों पर विशाल रामद्वारे बने हुए हैं। शाहपुरा शाखा के प्रवर्तक रामचरण थे, जिनकी 'अणभैवाणी' प्रकाशित हो चुकी है। इस शाखा के उल्लेखनीय कवि रामजन और जगन्नाथ हैं। खेड़ापा शाखा के मूल आचार्य हरिरामदास थे, जिनके शिष्य रामदास ने खेड़ापा में गद्दी स्थापित की। रामदास के उत्तराधिकारी दयालदास का 'करुणासागर' ग्रंथ अधिक प्रसिद्ध है। रैण के रामसनेही दरियावजी को अपना आदि गुरु मानते हैं। इनकी वाणी की भाषा ललित व सुगठित है और साहित्यिक दृष्टि से अभूतपूर्व

---

१. क्षितिमोहन सेन–मिडीवल मिस्टिसिज्म आफ इंडिया–पृ० ७०

२. बड़थ्वाल–हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय–प्रस्तावना–पृ० ८

प्रयोग इनके द्वारा किया गया है, जो इनकी साहित्यिक महत्ता का उद्‌घोष सा करता जान पड़ता है।

चरणदासी पंथ के मूल प्रवर्तक संत चरणदास मेवात प्रदेश के निवासी थे। उनके मत में योगयुक्ति की साधना, ब्रह्मज्ञान का चिन्तन और भगवत् भक्ति का विचित्र समन्वय दिखाई पड़ता है। इनके लिखे १२ ग्रंथों को तो विद्वान प्रामाणिक मानते हैं, इसके अलावा अनेक ग्रंथ इनके नाम से सबद्ध किये जाते हैं। इनकी दो शिष्याओं यथा-सहजो बाई और दयाबाई की रचनाओं का बड़ा मान है।

दादूपंथ महत्वपूर्ण संतकवियों की दृष्टि से सब से बढ़ा चढ़ा है। इस पंथ में दादूदयाल, गरीबदास, बखना, रज्जब, जगजीवन, जनगोपाल, भावजन, माधोदास वाजिन्द, संतदास, सुन्दरदास, टीमदास, मंगलदास, स्वरूपदास आदि उल्लेखनीय आचार्य हो गये हैं. जिनमें से दादू और सुन्दरदास का अधिक महत्व है। संत वस्तुतः कवि नहीं थे, वे तो आत्मकल्याण-पथ के पथिक मात्र थे। अतः उनकी कविता काव्य-कला की दृष्टि से नहीं लिखी जाकर, उपदेश और संदेश की दृष्टि से लिखी जाती थी। इनमें से अधिकांश संत कबीर की भाँति ही 'मसि-कागद' से अछूते थे। सुन्दरदास एक अपवाद थे और उनकी रचनायें इसीलिए विशिष्ट और महत्वपूर्ण हैं।

इन मुख्य पंथों के अलावा छोटे बड़े अनेक पथ अथवा मत प्रचलित हैं। आज दिन भी राजस्थान के घोर देहातों में संतवाणी की यह परम्परा मौजूद है, जिसका अध्ययन किया हो जाना चाहिए।

भक्ति साहित्य

संत साहित्य की तरह ही भक्ति साहित्य भी जनता का अपना साहित्य है। वह जनता के कंठों में बसता है, और फलस्वरूप अपने-

परिवर्तित रूप में मिलता है। राजस्थानी भक्ति साहित्य की सर्वप्रसिद्ध कवयित्री मीरां हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ नारी-कवि है जिसके पद समूचे भारत में लोकप्रिय बने हुए हैं। गिरिधर गोपाल पर न्यौछावर होने वाली बावरी मीरां के पद आज भी किसकी हृदतंत्री के तार नहीं झन-झना देते। कितना आकर्षण है उनमें। तरल वेदना, प्रिय से साक्षात्कार की अदम्य लालसा, जगनिन्दा के तूफान से अप्रभावित रखने वाली दृढ़ता, प्रेमी हृदय की आकुलता और आकांक्षा, भक्त का निश्छल आत्म निवेदन, आराध्य के प्रति आत्म समर्पण और अभूतपूर्व आत्मनिष्ठा, क्या नहीं है मीरां के पदों में। तभी तो वे सदियों से जनता के हृदय-हार बने हुए हैं। मीरां से कम लोकप्रिय पर भावना में उसी का अनुकरण करने वाले चन्द्रसखी के पद भी भक्ति साहित्य में महत्वपूर्ण हैं। पद लेखकों में बखतावर अपनी हृदयस्पर्शी रचना के लिए कृति कवि माने जायेंगे। अन्य लोकप्रिय कृतियों में पद्मा तेली कृत 'हरजी रो ब्यावलो' और रतना खाती कृत 'नरसी जी रो मायरो' हैं।

भक्ति साहित्य शास्त्रीय पद्धति से भी भूरि भूरि तादाद में रचा गया। चारण नरहरिदास कृत 'अवतार चरित' ईसरदास कृत 'हरिरस' माधोदास कृत 'रामरासो' आदि ऐसी ही रचनायें हैं। इसी पौराणिक, आख्यायिकाओं और पात्रों को लेकर 'रुक्मणी हरण', 'नागदमण' तथा अनेक चरित भी लिखे गये। भागवत पुराण, नासिकेत पुराण पद्मपुराण भगवद्गीता, महाभारत और रामायणादि ग्रंथों का अनुवाद भी राजस्थानी भाषा में किया गया है।

भक्ति साहित्य की इस परम्परा में व्रजनिधि नागरीदास, कृष्णदास, अग्रदास, भक्तों की अमरगाथाएँ लिखने वाले नाभादास, निम्बार्क सम्प्रदाय के परशुराम, चतुरसिंह, कल्याणदास, हित वृन्दावन दास, ओपा आढ़ा आदि अनेक कवि हैं और इनका साहित्य परिमाण में विशाल और प्रकार में विविधता रखता है।

यहाँ भक्ति साहित्य में उस विशाल लोक साहित्य का समावेश नहीं कर रहे हैं, जो हरजस, कीर्तन, रतजगा आदि के रूप में जन-साधारण के प्रिय बने हुए हैं। हम लोक साहित्य के क्षेत्र को स्वतंत्र समझते हैं और इसीलिए उस पर यहां कोई प्रकाश नहीं डाला जा रहा।

अन्य साहित्यः—

राजस्थानी भाषा का साहित्य बड़ा समृद्धि शाली रहा है। इसमें प्रायः सभी काव्य रूप और वस्तु-संचय की दृष्टि से अपार वैविध्य मिलता है। राजस्थान के कवियों ने डिंगल, पिंगल अथवा बोलचाल की राजस्थानी-तीनों भाषाओं में अपने को अभिव्यक्त किया है। घोड़ों की परीक्षा, वैद्यक, रत्नों की परीक्षा, ज्योतिष, तंत्र-मंत्र, संस्कृत ग्रंथों के अनुवाद, सुभाषित-या सूक्ति संग्रह-सभी यहाँ मिल जायेगा।

राजस्थानी नाट्य-परम्परा

अपभ्रंश की लीक से हट कर जब देश भाषा अपना निजी स्वरूप महत्ता के साथ व्यक्त कर उठी थी, उसी समय से राजस्थानी में अपनी नाट्य परम्परा के अंकुर स्पष्ट दिखाई देने लगे थे। डा० दशरथ ओझा ने अपने विद्वतापूर्ण प्रबन्ध 'हिन्दी नाटकः उद्भव और विकास' में हिन्दी शब्द को व्यापक अर्थ में ग्रहण करते हुए हिन्दी नाटक का उत्पत्तिकाल सत्रहवीं शताब्दी के स्थान पर तेरहवीं शताब्दी संवत १२८६ वि० माना है। उनके उक्त निष्कर्ष का आधार 'गयसुकुमार रास' नामक एक ग्रंथ है, जिसकी रचना लगभग संवत् १३०० में हुई थी। यह रासग्रंथ उस समय का है जब कि अपभ्रंश और राजस्थानी का सन्धि-काल था। डा० ओझा जी ने इसे ही हिन्दी का प्रथम नाटक माना है। इसे ही राजस्थानी का प्रथम नाटक माना जा सकता है क्योंकि इसकी

भाषा अपभ्रंश मिश्रीत राजस्थानी है। राजस्थानी साहित्य में तब से आज तक अनेक रास और ख्याल लिखे जाते रहे हैं और यह नाट्य परम्परा इतनी अधिक समृद्ध है कि उसका एक छोटे से निबंध में उचित मूल्यांकन नहीं किया जा सकता। राजस्थानी में रास ग्रंथों का विपुल भंडार है। ये रास (गीति नाट्य) जहां एक ओर जैन विद्वानों के हाथों में पड़कर धार्मिक प्रचार का साधन बने, वहां दूसरी ओर लौकिक आधार पाकर ये शृंगारिक व मनोरंजन प्रधान नाटक बन गए तत्कालीन दशाओं में धर्माश्रय अथवा राज्याश्रय द्वारा ही ये ग्रंथ रक्षित रह सके अन्यथा न जाने कब ये सब विलीन हो गए होते। जैनों के अपने तीर्थंकरों और आचार विचार में श्रेष्ठ, आदर्श और दानी श्रेष्ठियों को नायक बनाकर अनेक रासों की रचना की गई। इसी प्रकार राज्याश्रित कविजनों ने अपने आश्रयदाताओं के मनोविनोद और यश के लिए ऐसे नाटकों की सृष्टि की। धार्मिक हिन्दू भावना ने पौराणिक कथानकों को उपजीव्य बनवाकर अनेक रासों की रचना करवा डाली। इन रासों में संस्कृत नाटकों की भांति ही प्रारम्भ में मंगलाचरण (नान्दी) और अन्त में आशीर्वचन (भरतवाक्य) पाये जाते हैं। ये रास गीति नाट्य ही हैं, श्रव्य काव्य नहीं, इसे डा० दशरथ ओझा ने अच्छी प्रकार सिद्ध किया है। (प्रबंध—चौथा अध्याय)। अस्तु।

यही रास परंपरा आगे चल कर ख्यालों का रूप ग्रहण कर गई। सन् १८०८ में जर्मन विद्वान के लोग ने अपना हिन्दी व्याकरण लिखा। उसमें उन्होंने, ब्यावर के ईसाई पादरी (Rev. Robson of the Scotch Presbiterian Mission, Beawar) रोब्सन द्वारा संपादित ख्यालों के आधार मारवाड़ी के व्याकरण के संबंध में प्रकाश डाला है। कहने का तात्पर्य यह है कि राजधानी की अपनी नाट्य परम्परा दीर्घकाल से चली आ रही है।

आज दिन भी उन देहातों में, जहां आधुनिक युगके वैज्ञानिक साधन और सुविधायें नहीं पहुँच पायी हैं, सांझ होने के बाद ढोलक पर थाप पड़ती है, मंजीरा झनकार उठता है और मशालों के आलोक में ग्रामीण अभिनेता गा उठता है—'आयो आयो रे हरकारो राजा गोपीचन्द रो ?' रंग जमता है, सरस कण्ठ से मधुर आलाप, रंग बिरंगे कपड़े, सुनहले जेवर और प्रकृति का खुला हुआ रंगमंच। जननाट्य संघ ने खुले रंगमंच का आंदोलन चलाया था। राजस्थान के लिए यह कोई नई बात नहीं है। ये 'रास' और ख्याल' गीति-नाट्य की श्रेणी में ग्रहित किये जा सकते हैं।

'ख्याल संज्ञा से पुकारे जाने वाली ये राजस्थानी रचनायें अनेक प्रकार की और असंख्य हैं। जोधपुर, जयपुर, अजमेर, किशनगढ़, मथुरा, अलीगढ़, कलकत्ता आदि स्थानों से विभिन्न विषयों पर ये ख्याल प्रकाशित होते हैं, और हजारों की संख्या में होते हैं अनेक प्रकाशक इन्हें बेचकर मालामाल हो गए हैं। ये ख्याल इतने अधिक प्रकार के हैं कि शायद ही किसी प्रकाशक के पास अपने प्रकाशित गीति नाट्यों की सूची हो। इसी से उनकी बहुलता का अनुमान लगाया जा सकता है। गन्दी लोक रुचि को उभारने वाले अनेक अश्लील ख्याल छापे गए और अपनी गर्हित वृत्ति के कारण साहित्यिक उपेक्षा के पात्र बने पढ़े लिखे लोगों द्वारा इन्हें उपेक्षा से देखा जाने लगा। फिर भी अर्धशिक्षित ग्रामीण जनता के लिए 'ख्याल' कण्ठहार हैं। इस बात को बिना किसी हिचक के स्वीकार किया जा सकता है कि ख्याल' लोक-साहित्य के अत्यधिक निकट हैं।

प्रत्येक ख्याल का संघटन एक ही प्रकार का है। प्रत्येक पात्र मंच पर आकर स्वयं अपना परिचय जन-समुदाय को देता है। लटनट

। के नवाब वाजिदअली शाह के द्वारा 'इन्दर-सभा' नामक नाटक खेला गया था। कहा जाता है कि इसकी रचना अमानत द्वारा की गई थी। पात्र का प्रवेश और परिचय जैसा उसमें है, राजस्थानी ख्यालों में भी वैसा ही है। इन्दर-सभा का इन्द्र कहता है—

राजा हूं मैं कौम का, इन्दर मेरा नाम।
बिन परियों के दीद के, मुझे नहीं आराम॥

ठीक इसी प्रकार 'ख्याल राजा चन्द मलियागिरि' का नायक मंच पर प्रवेश करते ही कह उठता है—

'सोम वंश में जनम हमारा,
आया राजा चन्द्र सो।'

इस प्रकार कथानक आगे बढ़ा चलता है। विभिन्न पात्र आते हैं, वार्त्तालाप होता है। मंच का रिक्त हो जाना ही नवीन दृश्य का सूचक होता है।

ख्यालों की भांति ख्याल लेखकों की भी संख्या बहुत बड़ी है। हिन्दी में आये दिन निकलने वाले जासूसी उपन्यास लेखकों के समान ही इन ख्याल लेखकों को पारिश्रमिक के रूप में बहुत कम मिल पाता है। प्रकाशक २५) अथवा ३०) में अधिकार खरीद लेते हैं और स्वयं मालदार हो जाते हैं। ये ख्याल विभिन्न प्रकार के हैं। यथा—

धार्मिक नाटक— ख्याल पूरनमल भगत को, ख्याल मीरा मंगल को, ख्याल नरसी मुता को, ख्याल भगत प्रल्हाद को आदि।

पौराणिक रोमांस—ख्याल नल-दमयन्ती का, ख्याल राजा हिन्ड़ हरचसी को, ख्याल किसन रुकमणि को आदि।

विशुद्ध प्रेममूलक रोमांस- ख्याल ढोला-मारु को, ख्याल राजा चन्द मलियागिरि को, ख्याल विक्रम नागवन्ती को, ख्याल निहालदे

मुल्तान को, ख्याल खेमसिंह आभलदे को, ख्याल जगदेव को कङ्काली को आदि।

ऐतिहासिक—ख्याल राजा चन्द्रसेन को, ख्याल राव रिडमल सोडीको, ख्याल वीरमदे को, ख्याल जैसल तोलादे को।

वीर-पूजा के प्रतीक—ख्याल चौहान को, ख्याल सरवणकुमार को, ख्याल तेजाजी को, ख्याल पाबूजी राठौड़ को आदि।

विशुद्ध मनोरंजन हेतु—ख्याल नौटकी सहजादा को, ख्याल बुलिया भटियारण को, ख्याल चार भंगेड़ी को।

आदर्शवादी—ख्याल सत्य हरिचन्द्र को, ख्याल राजा भरथरी पिंगला को, ख्याल राजा मोरधज को, ख्याल राजा बलिको।

वर्त्तमान समस्या मूलक सुधारवादी—ख्याल रिश्वतानी को, ख्याल बेटी-बेचू को, ख्याल गंजेड़ी-भंगेड़ीको, ख्याल चोर-बाजारी को।

यह वर्गीकरण अपने आप में पूर्ण नहीं है। रामायण और महाभारत कथाएं भी ख्यालों के रूप में पाताई में मिल सकती हैं। इनके प्रकार बहुत हैं। यहां वर्गीकरण करने का उद्देश्य केवल राजस्थानी गीति नाट्यों अथवा ख्यालों की विषय विविधता का झांकी देना मात्र है। अस्तु।

प्राचीन भारतीय नाटकों की भांति ही प्रायः सभी ख्याल सुखान्त हैं। कारण स्पष्ट है। भारतीय वातावरण आध्यात्ममय है। हमारी मनसा सर्वदा 'सत्यमेव जयते' को साकार होते देखना चाहता है। इसीलिए अधर्म पर धर्म की, असत्य पर सत्य की, अनैतिकता पर

आध्यात्मिकता की, यथार्थ पर आदर्श की विजय दिखाना ही अधिकांश नाटककारों और नाटककारों का ध्येय रहा है। राजस्थानी समाज की रुचि इन्हीं लीकों पर चल रही है। इनका लीक से परे हटना ही आश्चर्य की बात होती। इनकी भाषा सदैव सरल और बोलचाल की राजस्थानी (ढूंढाड़ी, मारवाड़ी) ही होती है। बहुत से ख्यालों के आरम्भ में सूत्रधार उसका संक्षिप्त परिचय, नाटक लिखने का उद्देश्य आदि की जानकारी पाठकों को दे देता है। घटनाएं सरल और सुबोध होती हैं। चूंकि ख्यालों को अभिनीत करते समय किन्हीं बाह्य उपकरणों पर्दों, सीन-सिनेरी के साधनों की आवश्यकता नहीं होती अतः आश्चर्य और कौतूहल के दृश्यों का समावेश नहीं किया जाता। किया जा भी नहीं सकता। हां, ऐसी घटनाएं सूच्य रूप में दी जाती हैं। ऐसे हैं ये राजस्थानी के 'ख्याल'।

राजस्थानी गद्य

राजस्थानी साहित्य की विशेषरूप से उल्लेखनीय विशेषता उसका प्रचुर गद्य साहित्य है। और साथ ही आश्चर्य की बात तो यह है कि उपलब्ध गद्य वस्तु विन्यास और शिल्प की दृष्टि से बहुत वैविध्य रखता है। राजस्थानी गद्य का वस्तुतत्व और शिल्पतत्व के आधार पर मोटे तौर पर इस प्रकार विभाजन किया जा सकता है। (१) ऐतिहासिक गद्य (२) जैन लेखकों का गद्य (३) टीकाओं तथा अनुवादों का गद्य (४) कथाएं। यह विभाजन केवल अध्ययन की सुविधा के लिए है, और तथ्यों के अभाव में इसे किसी प्रकार पूर्ण नहीं माना जा सकता। यहाँ इन प्रत्येक प्रकार के गद्य-भंडार का संक्षिप्त परिचय मात्र कराने की चेष्टा करेंगे।

राजस्थानी गद्य का एक बहुत बड़ा भाग ऐतिहासिक साहित्य है। ऐतिहासिक गद्य साहित्य के अन्तर्गत (अ) (ब) इतिहास (स)

मुल्तान को,[२] ख्याल खेमसिंह आसलदे को, ख्याल जगदेव की कङ्काली को आदि।

ऐतिहासिक—ख्याल राजा चन्द्रसेन को, ख्याल राव रिड़मल मोहीको, ख्याल वीरमदे को, ख्याल जैमल तोलादे को।

वीर-पूजा के प्रतीक—ख्याल चौहान को, ख्याल अमरसिंह राठौड़ को, ख्याल तेजाजी को, ख्याल पाबूजी राठौड़ को आदि।

विशुद्ध मनोरंजन हेतु—ख्याल नौटंकी महाराज को, ख्याल बुलिया मनिहारन को, ख्याल चोर संगीड़ी को।

आदर्शवादी—ख्याल सत्य हरिश्चन्द्र को, ख्याल राजा भरथरी पिंगला को, ख्याल राजा मोरध्वज को, ख्याल राजा हरिचंद।

वर्तमान समस्या मूलक सुधारवादी—ख्याल विधवा-पुनर्विवाह को, ख्याल बेटी बेचन को, ख्याल अकेली मोहीको, ख्याल चोर-बाजारी को।

यह वर्गीकरण अपने आप में पूर्ण नहीं है। रामायण और महाभारत कथा भी ख्यालों के रूप में प्रकाश में मिल सकती है। इनके प्रकार बहुत है। यहाँ वर्गीकरण करने का उद्देश्य केवल राजस्थानी गीति नाट्यों अथवा ख्यालों की विषय विविधता की झाँकी देना मात्र है। अस्तु।

१- प्राचीन भारतीय नाटकों की भांति ही प्रायः सभी ख्याल सुखान्त हैं। कारण स्पष्ट है। भारतीय वातावरण आध्यात्मवाद है। हमारी सनातन श्रद्धा 'सत्यमेव जयते' को साकार होते देखना चाहता है। इसीलिए अधर्म पर धर्म की, असत्य पर सत्य की, अनीति पर

आध्यात्मिकता की, यथार्थ पर आदर्श की विजय दिखाता ही मजीन यागीशों व नाटककारों का ध्येय रहा है। राजस्थानी ख्याल इन्हीं लीकों पर चल रहे हैं। इनका लीक से परे हटना ही आश्चर्य की बात होती। इनकी भाषा सदैव सरल और बोलचाल की राजस्थानी (स्टेंडर्ड मारवाड़ी) ही होती है। बहुत से ख्यालों के प्रारम्भ में सूत्रधार अपना संक्षिप्त परिचय, नाटक लिखने का उद्देश्य आदि की जानकारी पाठकों को दे देता है। घटनाएं सरल और सुबोध होती हैं। चूंकि ख्यालों को अभिनीत करते समय किन्हीं वाद्य, उपकरणों पर्दों, सीन-सिनेरी के साधनों की आवश्यकता नहीं होती अतः आश्चर्य और कौतूहल के दृश्यों का समावेश नहीं किया जाता। किया जा भी नहीं सकता। हां ऐसी घटनाएं सूच्य रूप में दी जाती हैं। ऐसे हैं ये राजस्थानी के 'ख्याल'।

राजस्थानी गद्य

राजस्थानी साहित्य की विशेषरूप से उल्लेखनीय विशेषता उसका प्रचुर गद्य साहित्य है। और साथ ही आश्चर्य की बात तो यह है कि उपलब्ध गद्य वस्तु विन्यास और शिल्प की दृष्टि से बहुत वैविध्य रखता है। राजस्थानी गद्य का वस्तुतत्व और शिल्पतत्व के आधार पर मोटे तौर पर इस प्रकार विभाजन किया जा सकता है। (१) ऐतिहासिक गद्य (२) जैन लेखकों का गद्य (३) टीकाओं तथा अनुवादों का गद्य (४) कथाएं। यह विभाजन केवल अध्ययन की सुविधा के लिए है, और तथ्यों के अभाव में इसे किसी प्रकार पूर्ण नहीं माना जा सकता। यहाँ इन प्रत्येक प्रकार के गद्य-भंडार का संक्षिप्त परिचय मात्र कराने की चेष्टा करेंगे।

राजस्थानी गद्य का एक बहुत बड़ा भाग ऐतिहासिक साहित्य है। ऐतिहासिक गद्य साहित्य के अन्तर्गत (अ) (ब) इतिहास (स)

प्रसंग (द) दवावैत (इ) वचनिका (फ) प्रबंध काव्यों में आये विविध गद्यांश-यथा भट्टावलि आदि (ग) पट्टों, शिलालेखों, पत्रों, तथा विविध दस्तावेजों का गद्य (ह) वंशावली, पीढ़ियावली, दफ्तर, वही, विगत, हकीगत आदि ग्रहित किये जा सकते हैं। अर्ध-ऐतिहासिक में आख्यान तथा बात की गणना की जा सकती है। बात में किसी ऐतिहासिक घटना अथवा किसी व्यक्ति या स्थान का इतिहास संक्षेप में होता है। उसमें कल्पना और अनुश्रुति का विचित्र मेल होता है। आख्यानों में इतिहास के साथ लोककल्पना और अलौकि चमत्कारपूर्ण घटनाओं का मिश्रण रहता है। ये निजधरी कथाओं के रूप माने जा सकते हैं। कुछ लोग इन्हे दास्तान संज्ञा से भी सबोधित करते हैं। 'बात' संज्ञा का प्रयोग कहानियों के अर्थ में सामान्यतया किया है, इस पर आगे विचार करेंगे। ख्यात में या सलंग इतिहास होता है, अथवा बातों का संग्रह होता है। तथ्य परक रचनाओं को 'इतिहास' कहा जा सकता है, और उसी प्रकार से किसी एक घटना-वर्णन को 'प्रसंग'। 'दवावैत' और 'वचनिका' गद्य के प्रकार हैं-शिल्प की दृष्टि से दोनों प्रकार अपनी विशेषता रखते हैं। प्रबध काव्यों में भी स्थान स्थान पर 'वारता' 'वचनिका' 'भटावलि' के रूप में गद्य मिलता है। वंशावली और पीढियावली में राजाओं की पीढ़ियों का वर्णन होता है और बीच बीच मे आवश्यक ऐतिहासिक टिप्पण भी रहते हैं।

डा० टेसिटरी ने 'इतिहास', 'प्रसग', 'बात' 'दासतान' आदि की परिभाषा एक प्राचीन हस्तलेख के आधार पर दी है:—[1]

---

१ डा० रामकुमार वर्मा-हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास-पृ० १७७ से उद्धृत।

जिण लिखा में दराजी रहै सो लिखी 'इतिहास' कहावै ॥ १ ॥
जिण लिखा में कम दराजी सो लिखो 'बात' कहावै ॥ २ ॥
इतिहास रो अवयव 'प्रसंग' कहावै ॥ ३ ॥
जिण बात में एक प्रसंग होज चमत्कारिक होय तिका बात 'दास्तान' कहावै ॥ ४ ॥

इसी प्रकार से 'दवावैत' और 'वचनिका' संज्ञक रचनायें सतुकान्त गद्य ही हैं। इनमें कई स्थानों पर शुद्ध पद्य भी उपलब्ध होता है, जिससे ऐसी रचनायें 'चम्पूकाव्य' बन जाती हैं। दवावैत में पद्य के अनुकरण पर अन्त्यानुप्रास, मध्यानुप्रास व यमक आदि की छटा देखने को मिलती है। पद्य में पाया जाने वाला प्रसिद्ध अलंकार 'वयण-सगाई' इस गद्य में भी मिलता है। यह गद्य शैली की प्रौढ़ता का प्रतीक है।[1] दवावैत दो प्रकार की मानी गई है–(१) शुद्धबंध अर्थात् पद्यबंध जिसमें अनुप्रास मिलाया जाता है (२) गद्यबंध जिसमें अनुप्रास का बंधन नहीं होता।[2] दवावैतों में मालीदास कृत 'नरसिंहदास री दवावैत' अधिक प्रसिद्ध है। अनेक जैन लेखकों ने भी दवावैत लिखे हैं।

वचनिका के भी इसी प्रकार के दो भेद किये गये हैं–गद्यबंध। और पद्य बंध। दवावैत की तुलना में वचनिका कुछ लम्बी और विस्तृत होती है और गद्यबंध में तो मानों कई छंदों के जोड़े अर्थात युग्म वचनिका रूप में जुड़ते चले जाते हैं।[3]

---

१. डा० [illegible]–जनपद–वर्ष १ अंक ३-४ पृ० ६२
२. रघुनाथ रूपक गीतां रो–पृ० २३६,
३. वही–पृ० २४२

वचनिकाओं में दो बहुत प्रसिद्ध हैं। एक शिवदास कृत अचलदास खीची री वचनिका जिस में गागरोन गढ़ के खीची (चौहान) वंशीय राजा अचलदास के वीरतापूर्ण युद्ध और अन्त का वर्णन है। यह पन्द्रहवीं शती उत्तरार्द्ध की रचना है। खिड़िया जगा रचित 'राठौड़ महेसदासौत री वचनिका' दूसरी प्रख्यात रचना है।

ख्यातकारों में मुता नैणसी, बाँकीदास और दयालदास सबसे अधिक महत्व रखते हैं। नैणसी तो 'राजस्थान का अबुलफजल' कहा गया है जिसका यह अधिकारी है। उसकी ख्यात में समूचे राजस्थान का इतिहास आ गया है। बाँकीदास की ख्यात में २५०० से ऊपर वार्तों का संग्रह है। दयालदास की ख्यात में बीकानेर के राठौड़ नरेशों का सलंग इतिहास दिया गया है। प्रौढ़ और शक्तिशाली गद्य के नमूने के रूप में हम इन सभी रचनाओं को ले सकते हैं।

जैन लेखकों के गद्य का अलग विभाग रखने का अर्थ यह नहीं कि उन्होंने ऊपर बताये गये प्रकार के ग्रंथ नहीं लिखे। वस्तुतः ऐतिहासिक गद्य के क्षेत्र में भी जैन लेखकों का योगदान महत्व का रहा है उन्होंने वचनिका तथा दवावैत' भी लिखे हैं। 'जिन-सुख-सूरि--दवावैत', जिनलाभ-सूरि दवावैत आदि ऐसी ही रचनायें हैं। अस्तु। हम जैन लेखकों के गद्य के अन्तर्गत ऐसी रचनाओं के अतिरिक्त उस समस्त साहित्य को लेंगे जो धार्मिक अथवा लौकिक आधार पर रचा गया हो। ऐसे साहित्य में (१) जैन सूत्र साहित्य के बालावबोध टब्बा चूर्णिका आदि का गद्य (२) जैन कथाओं का गद्य (३) व्याकरण तथा औक्तिकों का गद्य आदि माने जायेंगे।

राजस्थानी का प्राचीनतम गद्य का उदाहरण (१३३० सं०) जैन लेखक रचित ही है। यह उदाहरण हमें गुजरात के आशापल्ली नगर में आश्विन सुदी ५, गुरुवार संवत् १३३० में ताड़पत्र पर लिखी 'आराधना' नामक रचना में मिलता है।[1] संस्कृत के बालोपयोगी व्याकरणों में कुछ लेखकों ने उदाहरण बोलचाल की अथवा साहित्य की देश्यभाषा में दिये हैं। संग्रामसिंह की 'बालशिक्षा' (१३३६) और कुलमंडन का 'मुग्धावबोध औक्तिक'(१४५०) ऐसी ही उपयोगी रचनायें हैं। इनसे तत्कालीन भाषा पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। जैनसाधुओं ने अपने धर्म के गहन विचार जन साधारण तक पहुँचाने के लिए कथाओं का आश्रय लिया। ये कथायें बहुधा धार्मिक ग्रंथ की व्याख्याओं के साथ उदाहरण रूप ग्रथित की गई हैं। ऐसी रचनायें बालावबोध' कहलाईं। बालावबोध कारों में तरुणप्रभसूरि, सोमसुन्दर सूरि, मेरुसुन्दर और पार्श्व चन्द्र के नाम महत्व के हैं। धर्म कथाओं में माणिक्यचंद्र सूरि रचित 'पृथ्वीचंद्र चरित' अथवा 'वाग्विलास' कला और भाषा कौशल की दृष्टि से उल्लेखनीय रचना हैं।

टीकाओं तथा अनुवाद ग्रंथों के रूप में भी हमें राजस्थानी गद्य का नमूना देखने को मिलता है (२) विविध महाकाव्यों और काव्य-ग्रंथों की टीकाओं के साथ ही (३) धार्मिक ग्रंथों के यथा रामायण, भागवत, गीत गोविन्द आदि के अनुवाद भी प्राप्य हैं। इसी प्रकार (४) लौकिक और मनोरंजक ग्रंथों जैसे पंचतंत्र, सिंहासन बत्तीसी, शुक बहोत्तरी, कथा सरित्सागर के अनुवाद भी हुये हैं और (५)

---

१. मुनि जिनविजय प्राचीन गुजराती गद्य संदर्भ—पृ० २११

वचनिकाओं में दो बहुल प्रसिद्ध हैं। एक शिवदास कृ
अचलदास खीची री वचनिका जिस में गागरोन गढ़ के खीचं
(चौहान) वंशीय राजा अचलदास के वीरतापूर्ण युद्ध और अन्त क
वर्णन हैं। यह पन्द्रहवीं शती उत्तरार्द्ध की रचना है। खिड़िया जग
रचित 'राठौड़ महेसदासौत री वचनिका' दूसरी प्रख्यात रचना है।

ख्यातकारों में मुता नैणसी, बाँकीदास और दयालदास सबसे
अधिक महत्व रखते हैं। नैणसी तो 'राजस्थान का अबुलफजल' कहा
गया है जिसका वह अधिकारी है। उसकी ख्यात में समूचे राजस्थान
का इतिहास आ गया है। बाँकीदास की ख्यात में २५०० से ऊपर वार्तो
का संग्रह है। दयालदास की ख्यात में बीकानेर के राठौड़ नरेशों
का सलंग इतिहास दिया गया है। प्रौढ और शक्तिशाली गद्य के नमूने
के रूप में हम इन सभी रचनाओं को ले सकते हैं।

जैन लेखकों के गद्य का अलग विभाग रखने का अर्थ यह
नहीं कि उन्होंने ऊपर बताये गये प्रकार के ग्रंथ नहीं लिखे। वस्तुतः
ऐतिहासिक गद्य के क्षेत्र में भी जैन लेखकों का योगदान महत्व का रहा
है उन्होंने वचनिका तथा दवावैत' भी लिखे हैं। 'जिन-सुख-सूरि-
-दवावैत', जिननाम-सूरि दवावैत आदि ऐसी ही रचनायें हैं। अस्तु।
हम जैन लेखकों के गद्य के अन्तर्गत ऐसी रचनाओं के अतिरिक्त उस
समस्त साहित्य को लेंगे जो धार्मिक अथवा लौकिक अधार पर रचा
गया हो। ऐसे साहित्य में (१) जैन सूत्र साहित्य के बालावबोध टब्बा
चूर्णिका आदि का गद्य (२) जैन कथाओं का गद्य (३) व्याकरण
तथा औक्तिकों का गद्य आदि माने जायंगे।

राजस्थानी का प्राचीनतम गद्य का उदाहरण (१३३० स०) जैन लेखक रचित ही है। यह उदाहरण हमें गुजरात के आशापल्ली नगर में आश्विन सुदी ५, गुरुवार संवत् १३३० में ताड़पत्र पर लिखी 'आराधना' नामक रचना में मिलता है।[1] संस्कृत के बालोपयोगी व्याकरणों में कुछ लेखकों ने उदाहरण बोलचाल की अथवा साहित्य की देश्यभाषा में दिये हैं। संग्रामसिंह की 'बालशिक्षा' (१३३६) और कुलमंडन का 'मुग्धावबोध औक्तिक'(१४५०) ऐसी ही उपयोगी रचनायें हैं। इनसे तत्कालीन भाषा पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। जैनसाधुओं ने अपने धर्म के गहन विचार जन साधारण तक पहुँचाने के लिए कथाओं का आश्रय लिया। ये कथायें बहुधा धार्मिक ग्रंथ की व्याख्याओं के साथ उदाहरण रूप ग्रथित की गई हैं। ऐसी रचनायें बालावबोध' कहलाईं। बालावबोध कारों में तरुणप्रभसूरि. सोमसुन्दर सूरि, मेरुसुन्दर और पार्श्वचन्द्र के नाम महत्व के हैं। धर्म कथाओं में माणिक्यचंद्र सूरि रचित 'पृथ्वीचंद्र चरित' अथवा 'वाग्विलास' कला और भाषा कौशल की दृष्टि से उल्लेखनीय रचना है।

टीकाओं तथा अनुवाद ग्रंथों के रूप में भी हमें राजस्थानी गद्य का नमूना देखने को मिलता है (२) विविध महाकाव्यों और काव्य-ग्रंथों की टीकाओं के साथ ही (३) धार्मिक ग्रंथों के यथा रामायण, भागवत, गीत गोविन्द आदि के अनुवाद भी प्राप्य हैं। इसी प्रकार (४) लौकिक और मनोरंजक ग्रंथों जैसे पंचतंत्र, सिंहासन बत्तीसी, शुक बहोत्तरी, कथा सरित्सागर के अनुवाद भी हुये हैं और (५)

---

१. मुनि जिनविजय प्राचीन गुजराती गद्य संदर्भ-पृ० २११

वैद्यक, वास्तु, शिल्प, ज्योतिष आदि के शास्त्रीय ग्रंथों के भी अनुवाद समय समय पर किये गये हैं। अनुवाद साहित्य का परिमाण भी काफी है।

परिमाण और लोकप्रियता में सिरमौर राजस्थानी गद्य का स्वरूप 'कथा' का है। इन कथाओं को 'वात' कह कर पुकारा जाता है और समूचे राजस्थान भर में, ये रचनायें बहुत बड़ी संख्या में उपलब्ध हैं। कथानक की दृष्टि से इन्हें ऐतिहासिक, व्याख्यानात्मक, काल्पनिक, पौराणिक विभागों में बाँटा जा सकता है। ये पद्यात्मक, गद्यात्मक और मिश्रित–तीनों रूपों में मिलती हैं। श्री० नरोत्तमदासजी स्वामी के शब्दों में—"इन कहानियों के सैकड़ों समह मिलते हैं, जिनमें हजारों कहानियाँ हैं—धर्म की और नीति की, वीरता की और प्रेम की, हास्य की और करुणा की, राजाओं की और प्रजा की, देवताओं की और भूतप्रेतों की, चोरों की और डाकुओं की, आदर्शवादी और यथार्थवादी, लोक कथाएँ और कला कृतियां–सारांश यह कि सभी प्रकार की"।

कलात्मक गद्य की कृतियों में 'खींची गंगेव नींबावत को दोहहरो' प्रसिद्ध है। अन्य कृतियों में 'राजान–रावत रो वात–वणाव', 'सभा शृंगार' आदि मुख्य हैं। बाल साहित्य तो स्वयं स्वतंत्र अध्ययन का विषय है। अस्तु।

पिछले कुछ पृष्ठों में मैंने राजस्थानी साहित्य की रूपरेखा देने की चेष्टा की है, जिससे कि इसके संबंध में पाठकों को सामान्य जानकारी हो जाये। पर्याप्त तथ्यों के अभाव, अपनी अल्पज्ञता अथवा अन्य कारणों से यदि कुछ त्रुटियाँ रह गई हों, तो उदार और सहृदय पाठकों से सुझावों की अपेक्षा है।

कवि जान

※

जान कवि की रचनायें बड़ी ही सरस और भाव पूर्ण हैं। उनमें अधिकांश शृंगार रसात्मक हैं, जिनमें सबसे बड़ी संख्या प्रेमाख्यानों की है। जान कवि हिन्दी का सबसे बड़ा प्रेमाख्यानों का लेखक कहा जा सकता है। उसकी ऐतिहासिक कृतियाँ भी बहुत महत्वपूर्ण हैं। कायमखाँ रासा भारतीय ऐतिहासिक काव्यों में प्रमुख स्थान प्राप्त करे, ऐसा ग्रन्थ है।

—अगरचंद नाहटा

कवि जान

जान कवि को प्रकाश में लाने का श्रेय राजस्थान के अध्ययन-निष्ठ विद्वान् श्री अगरचन्द नाहटा को है। अरबी, फारसी संस्कृत, पिंगल और सामान्य राजस्थानी भाषा में निष्णात, इतिहास, के विद्वान्, पचहत्तर से अधिक ग्रंथों के रचयिता, सरस्वती व लक्ष्मी के वरदपुत्र, धार्मिक सहिष्णुता के हिमायती, दृष्टिकोण से ठेठ भारतीय, प्रतिभा सम्पन्न, बहुश्रुत इस मुस्लिम कवि के साथ न्याय नहीं किया गया। जिस शीर्ष और विशिष्ट आसन के वे हकदार हैं, अज्ञान के कारण कवि जान को वह आसन नहीं दिया जा सका।

जान कवि का पूरा नाम न्यामतखाँ है। जयपुर राज्य के सीकर इलाके में फतहपुर का परगना है। यहां के कायमखानी नवाबों के वंश में जान का जन्म हुआ। कायम खानी वंश का मूल पुरुष चौहाण करमसी था जिसको फिरोजशाह तुगलक के पदाधिकारी और हिसार के सूबेदार सैयद नासिर ने संवत् १४४० में मुसलमान बनाया और उसका नाम बदलकर कायमखां रखा। इसी के वंशज कायमखानी कहलाये। कायमखां की तीसरी पीढ़ी में फतहखां हुआ जिसकी आठवीं पीढ़ी में कवि जान पैदा हुआ। जान अपने पिता दिवान अलफखां का दूसरा लड़का था। न्यामतखां उर्फ कवि जान का जन्म कब हुआ यह ठीक मालूम नहीं है किन्तु रचनाओं में दिये गये उनके लेखन समय से निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि इनका रचना काल सं० १६७१ से संवत् १७२१ तक था। इस प्रकार माँ भारती का यह साधक अपने जीवन की बहुमूल्य पचास वर्षों की अवधि में निरन्तर अपनी साधना के सुमन वाणी के मंदिर में चढ़ाता रहा।

इनके बनाये ग्रंथ, जो आद्यावधि प्राप्त हुये हैं, निम्न हैं,- (१) मदन विनोद (२) ज्ञान दीप (३) रसमंजरी (४) अलफखाँ की पेडी (५) कायम रासौ (६) पुहुप बरखा (७) कंवलावती कथा (८) बरवा ग्रंथ (९) छबि सागर (१०) कलावती कथा (११) छीता की कथा (१२) रूप मंजरी (१३) मोहिनी (१४) चन्द्रसेन राजा सील-निधान की कथा (१५) अरदेसर पतिसाह की कथा (१६) कामरानी वा पीतम दास की कथा (१७) पाइन परिच्छा (१८) शृंगार शतक (१९) विरह शतक (२०) भावशतक (२१) बलूकिया विरही की कथा (२२) तमीम अनसारी की कथा (२३) कथा कलंदर की (२४) कथा निरमल की (२५) कथा सतवंती की (२६) कुलवंती की कथा (२७) शील वंती की कथा (२८) खिजर खाँ साहिजादा और देवल देवी (२९) रतनावती की कथा (३०) कौतहली की कथा (३१) कथा सुभट राय का (३२) बुधिसागर (३३) कामलता कथा (३४) चेतन नामा (३५) सिख ग्रंथ (३६) सुधासिख ग्रंथ (३७) बुधिदायक (३८) बुधिदीप (३९) घूंघट नामा (४०) दरसनामा (४१) सत-नामा (४२) अलक नामा (४३) दरसन नामा (४४) बारह मासा (४५) बरवै नामा (४६) बाँदीनामा (४७) बीजनामा (४८) कबू-तर नामा (४९) गूढग्रन्थ (५०) देसावली (५१) रसकोष (५२) उत्तम शब्द (५३) सिंहासागर (५४) वैद्यक मिथ शतपद (५५) शृंगार तिलक (५६) प्रेम सागर (५७) वियोग सागर (५८) पट्ऋतु पवंगम छंद (५९) रसतरंगिनी (६०) रतन मंजरी (६१) नलदमयंती (६२) बैसुरामा (६३) सतविनोद (६४) विरह को मनोरथ (६५) अफरनामा (६६) पदनामा (६७) भावकल्लोल (६८) कंदर्प कल्लोल (६९) नाममालाअनेकार्थी (७०) रतनावती (७१) सुधा-सागर (७२) रवास संग्रह (७३) लैला-मजनूं (७४) कवि बल्लभ (७५) वैदक मति।

, प्रस्तुत सूची को देखने से हमें कवि के बहुश्रुत अथवा बहु पठित होने का प्रमाण मिल जाता है। शब्द कोष, रीति ग्रन्थ, साहित्य शास्त्र, प्रेमाख्यानक काव्य, नीति काव्य, वैद्यक, ऐतिहासिक काव्य सभी प्रकार की व सभी विषयों की रचनायें कवि ने की है जो उसके विकसित और अध्ययन शील व्यक्तित्व की परिचायक हैं। उन्होंने संस्कृत ग्रन्थों की टीकायें भी लिखी हैं और पहेलियां भी, कामशास्त्र पर शास्त्रीय दृष्टि से विचार किया है, और परम्परानुकूल षटऋतु वर्णन भी। जान एक बहुमुखी प्रतिभा का कवि था, इसमें कोई संदेह नहीं। किन्तु वह कवि से बढ़ कर कहानीकार था। कहानी कैसे कही जाय, यह कला उसे बखूबी आती है। उसके प्रेम काव्यों में कथानक के सूत्र इस प्रकार बुने गये हैं कि समूचा काव्य रुचिकर हो जाता है। कथा का प्रवाह अक्षुण्ण बना रहता है, उसकी धारावाहिकता में कोई कमी नहीं आती। वर्णन की स्वाभाविकता और सरसता के साथ प्रसाद गुणयुक्त लोक भाषा राजस्थानी अथवा ब्रजभाषा का संयोग उसके ग्रन्थों को पाठक के लिये सरलता से ग्राह्य कर देते हैं। प्रेमाख्यानों में अनेक स्थलों पर कवि की भावुकता दर्शनीय है। कवि का मन मुख्यतः शृंगार रस में रमा, जिसने एक ओर कवि को प्रेम कथाओं की सृष्टि करने को बाध्य किया, दूसरी ओर रीतिकालीन वातावरण के अनुसार मुक्तक शृँगार के लिये प्रेरणा दी। वह निसन्देह प्रेमाख्यान लेखकों में शीर्षस्थान का अधिकारी है।

कवि की भाषा व्यवस्थित, माँजल और सरल है। उसमें दुरूहता का तो नामों निशान नहीं है। विषय और प्रसंग के अनुकूल उसमें परिवर्तन आ जाता है। जो भाषा शृँगार में मसृणता, कोमलता और मधुरता की द्योतक होती है, युद्धों के प्रसंग में जाकर उसी में ओज आ जाता है। और याद रखने की बात है कि अन्य कवियों की तरह कटु व्यञ्जनों और द्वित्व वर्णों का प्रयोग उन्होंने नहीं के बराबर किया है। वैसे जान शृँगार और प्रेम का कवि है और कुशल कहानीकार है।

जान ने संस्कृत के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'पंचतंत्र' को आधार बनाकर एक विशालकाय काव्य ग्रन्थ का निर्माण किया जिसका नाम है 'बुधिसागर' इस का परिमाण साढे तीन हजार छंदों का है। इस प्रकार हम देखते हैं कि इस बहुमुखी प्रतिभापुत्र आशुकवि ने विपुल परिमाण में और विविध विषयों पर काव्य रचना की।

कवि स्वयं नवाबी खानदान का था और उसकी राजदरबारों में पहुंच थी। जान पड़ता है कि वह मुगल सम्राट शाहजहाँ से भी मिला था और उसने अपनी रचनायें उसे भेंट भी की थीं। इसका एक ऐतिहासिक काव्य 'क्याम खाँ रासा' राजस्थान पुरातत्व मंदिर से श्री अगरचंदजी नाहटा और डॉ० दशरथ शर्मा के संपादकत्व में प्रकाशित हुआ है। वह ऐतिहासिक तटस्थ दृष्टिकोण, उदार वृत्ति और सरलता के लिये द्रष्टव्य है।

जान

क्याम खाँ रासा

क्यामखांन को बखान

चौपाई

करमचंदकी बरनौं बाता, कैसैं कीनौं तुरक बिधाता।
कुअर करमचंद खेलत डोलत, अधिक सिरिष्ट बचनमुख बोलत ॥
येक द्यौं सबहु चल्यौ अहेरैं। भाई बंधव हे बहु नेरैं।
सावर हरन रोझ बहु पाये। गहिबेकौं सबहि ललचाये ॥
आप आपकौं सब उठि धाये। भूलि परे बन मैं भरमाये।
सबै अहेरैं के मदमाते। आप आपको डोलैं हाटैं ॥
करमचंद इक बिरछ निहार्यौ। बैठ्यौ आइ हुतौ अतिहार्यौ।
घोरा बांधि डारि सकलात। पौढ्यौ कुंवर दैन सुख गात ॥
आई नींद गयो तब सोई। ढरि गइ छांह दुपहरि होई।
फेरोसाह दिली सुलतांन। चारौं चकनै जाकी थान ॥
उतरे हे हिसार में आइ। एक दिन चढ़े अहेरैं चाइ।
आवत आवत उहिठा आये। कुंवर बिरछतर सोवत पाये ॥
सकल बिरछ छइयां ढरि गई। वा तरवर की दूरि न भई।
पति शाह अचरज की बात। देखि देखि अति ही भरमात ॥
नासिर सैद बुलायौ पास। जो देख्यौ सो कर्यौ प्रकास।
अचरज रहे सैद पतिसाहि। महापुरुष कोउ यहु आई ॥
कह्यौ जगाइ पाइ इह लागैं। सूते भाग हमारे जागैं।

साहस करिकै कुंवर जगायौ। हिंदू देख बहुत भरमायौ ॥
हिंदू मांहि न होइ करामत। इन कैसै कै पाइ न्यामत।
सैद कह्यौ ऐसी त्रिय धावै। अंत पंथ तुरकनि यहु पावै ॥
पूछ्यौ तब हि कहा तुव बात। रहत कहां साची कहु बात।
ददरेवौ रहिवेको ठाँव। मोटेराव पिता को नांव ॥
वंस हमारौ है चहुवांन। नाम करमचंद कहत अहांन।
पातसाहनैं निकट बुलायौ। बहुत प्यारसौं गरैं लगायो ॥
कह्यौ संग मो चलि चहुवान। दै हौ तोकौं आदर मान ॥

दोहा

कर्मचंदतै फरिके, धरयो क्यामखां नांम।
पातसाह संगहि लये, आयो अपनी ठांम ॥

चौपाइ

तब हिं सैद नासर यौं कह्यौ। तुम मेरे भागनि यहु लह्यो।
मोकौं दुहु जु याहि पढ़ाउ। तुम लाइक करि तुमपै लाऊं ॥
पातसाह भाव्यो यहु भाख। पायौ रतन जतन सौं राख।
क्यामखांन संग चढ़े अहेरै। ते सब गये आपुनैं डेरैं ॥
करमचंद घर आयो नाहीं। रोर परी ददरेवैं मांही।
येक परेवा सैद पठायो। ये ते मांहि लैन बहु आयो ॥
मोटाराउ गयो हिसार। पातसाह कीनौं बहु प्यार।
कह्यो करमचंद मोकौं देहु। जो भावै सो बदलौ लेहु ॥
तुरक भयेकी करिहु न चिंत। याकौं राखौं ज्यों सुत मित।
याकौं करिहौं पंच हजारी। साँचु कहत हौं बांह हमारी ॥

कर तसलीम कह्यौ यों राइ। दिली पति जो करे सु न्याइ।
जो सेवा करि हैं सो बढ़ि हैं। सोई फूल महेसुर चढ़ि हैं।
पात साहि देकैं सरपाव। बिदा करयो डेरैं को राव।
पातसाह दिल्लीकों धायो। क्यामखांनु तब सैद पठायो।
द्वादस हे मीरां के नंदन। तिनमें क्यामखाँनु जग बंदन।
येक ठौर पढ़न ये जाहिं। औरे लरिहैं आपुन मांहि॥
रोवत लरत येक दिन जात। बालक आपुन मांहि रिसात।
कुतुब नूरदी नूर जहाँन। हांसीते बैठे हैं आंन॥
तरयो क्यामखां जात उदास। तबहि बुलाय बिठायो पास।
पीरनु बचन तब ही उच्चरै। तैं आंसा काहे द्रिग भरे॥
मारौं थाप चबाऊँ लौंन। धनी बावनी मारै कौन।
नेंब और गंदौरा आंन। दये नूरदी नूरजहांन॥
लये क्यामखां तब मन आंढै। नेंबू आदि गंदौरा पाछै।
कच्यौ गीत यहु ह्वै इन गोत। खोट ह्वै फिर मीटे होत॥
केतक दिन पढ़तैं ही गये। क्यांमखानु पढ़ि पूरे भये।
सैद कह्यौ अब सुनंत करावहु। करहुं नमाजं दीन में आवहु॥
तब क्यामखान बिनती कीन। मेरौ हूँ मंन चाहत दीन।
पै यहु चित मोहि चित मांहि। हमसौं साक करे को नांहीं॥
नासिर सैद करांमत पूरन। जाको कह्यौ होत है दूरन।
यहु चिंता जिन चितकौं देहु। मेरे बचन मांनिकैं लेहु॥
बड़े बड़े जगु ह्वै हैं राइ। ते तनया देहैं करि चाइ।
ह्वै है जोध मंडोवर राइ। यहु डोला घर देइ पठाइ॥

हुवै बहलोल दिली सुलतांन। दैहै तनया निहचै मांन।
मीरां के मुख निकसै बैन। ते सब भये ऐन ही मैंन॥
तबही दीन मैं आयौ खान। निर्मल मो मन मुस्सलमांन।
जब सब बातिन निर्मल पायो। तब मीरां दिल्ली ले धायौ॥
पातसाह देखत हरसाये। मनसब दैकै खांन बढाये।
पातसाह मीरां को प्यार। दिन दिन खांसों बढ़त अपार॥
मीरां जी जब रोगी भये। पातसाह पूछन कों गये।
तब मीरांजी ऐसैं भाख्यौ। क्यांमखानु मैं सुत करि राख्यौ॥
जौ कबहू मेरो ह्वै काल। याकौं दीजहु मनसब माल।
मेरैं पूत सपूत न कोई। जिनतैं सेव तुम्हारी होई॥
पातसाह भाख्यो जू नीकै। क्यामखानु है लाइक टीकै।
पातसाह उठि डेरै आये। तब मीरां सब पुत्र बुलाये॥
कह्यौ सुनहु तुम सगरे भाई। क्यामखानु कौं दई बड़ाई।
यहु तुममैं कीनौ सिरमौर। याकौं समझौ मेरी ठौर॥
क्यामखानु सौं ये सिख भाखी। इनकौं बहुत प्यारसौं राखी।
सिख दै मीरां कलमां कह्यौ। या कलमैं कौं अमर न रह्यौ॥
मीरां भये जबहि बस काल। लह्यो क्यामखां मनसब माल॥

क्यामखां मोजदी जुध करत है

रुहतक झुञ्झर जनम भुमि, मोजदीन अगवांन।
फौंजदार लाहोरकौ, है दल बल अनग्यांन॥
उन कहि पठयो क्यामखां, छाडहु कोट हिसार।
जो तुम गहर लगाइ हौ, हमहि न लागैं बार॥

पातसाह कौं नां बदहि, सेवा करन न जाहिं।
तिनही दीनी बावनी, कहियो किहिं बल खाहि॥
तबहि क्यामखां यों लिख्यो, सुनि अगवान गिवार।
को काहूकौ देतु है, दैन हार करतार॥
दिल्ली दई जिन खिदरखां, तिन मो दयो हिसार।
ऐसौं कौन जु लइ सकै, जो दीनौ करतार॥
जो चढ़ि आवै खिदरखां, तौ ना तजौं हिसार।
जो हिसार अब छाँड हौं, हांसी हुवै संसार॥
कुतब हमाही मदत है, निहचै जियमें जान।
जो अपनौ चाहै भलौ, जिन आवहि अगवान॥
रोस भयो चिठी पढ़त, दयो तवहिं नीसांन।
महा प्रबल दल साजकै, चढ़ि जु चल्यौ अगवांन॥
सुनत बात यह क्यामखाँ, करयो लरन कौ साज।
जुझ बिना सूझत नहीं, जिहं भाजन की लाज॥
आवत आवत मोजदी, नेरैं उतरयौ आइ।
चिठी लिखिकै बहुरि इक, मानम दयो पठाइ॥
काहे लरिकै क्यामखाँ, मरिहै बेही काज।
सुलतानन कै कटकसौं, भाजत कवी लाज॥
मेरे कटक अनत है, मारि डारि हौं तोहि।
याते फिरि फिरि कहतु हौं, दया आइ है मोहि॥
क्यामखानु तब यों लिख्यो, सुनि अगवान गिवार।
तेरी डिठि है कटकपर, मेरि डिठि करतार॥

चिंता नैकु न कीजिये, जौ रिप हौंहि अनेक।
मारन ज्यावंनहार है, सु तौ जांन कहि येक॥
ढीठ मसीठन फेर तू, अबहि मिलावहु ढीठ।
है है जाके ईठ विधु, ताकी रहै पटीठ॥
मोजदीन उतते चढ्यो, इतते काइमखांन।
चाहुवांन अगवान मिलि, मलौ करयौ घमसान॥
जैसी सावन की घटा, मिली सैन द्वै आइ।
अंधकार ही ह्वै गयौ, धूरि रही जगु छाइ॥

नाराइच छंद

चढ़े सूद्धार खरवां, बजंत सार सार ही।
लरंत जोध जोधसों, रंत मार मार ही॥
भई सुरंग भोम है, कटंत हाथ पाव ही।
सुभट्ट सीस टूटिहैं, मिटै न चित्त चाव ही॥
कटें परें उटें लरैं, मरैं बिना नहीं रहें।
मदैं न घाव चोटकों, छतीस आवधें सहै॥
परें हथ्यार हाथतें, भुजा जवैं कटंत हैं।
तवैं सुभट्ट खरिवां, करै हथ्यार देत हैं॥
परे करी तुखार हैं, लरे मरे जुझार हैं।
गनें गनें न जात हैं, अपार ते अपार हैं॥
रचरे महेस जुग्गनि, अनंद चैनमैं हंसैं।
गिरिज्झ आममानतें, सु देखि देखिकैं धंसैं॥

दोहा

जबहि कटक दहु औरके, मरे परे घमसांन।
तब दलमेंतै निकसिकै, चलि आयो अगवान॥
क्यास क्यामखां ही करत, अरु डारत केकांन।
इततै निकस्यो क्यामखां, चक्रवती चहुवाँन॥
बरछी बाही मौजदी, हन्यो कायमखां घांन।
ये राखे करतार नैं, पर्यो मौम अगवांन॥
काइमखां चहुवांननैं; लये मौजदी मारि।
दुलहु बिन न जनेत ह्वै, भाज जले दल हारि॥
सब दल लूट्यो क्यामखां, जीते करी तुखार।
दले दमामे जैतके, उपज्यौ चैन अपार॥
सुनी बात यह खिदरखां, काटि काटि कर खाइ।
मेरे दल बल जिन हनें, तासौं लरिहौं जाइ॥
रैंन दिनां चिंता करै, किहिं बिधि लरियें जाइ।
क्यामखानु की धाकतें, चलत बहुत अरसाइ॥
जबहि सुन्यो यों क्यामखां, बहुत पठान रिसाइ।
तब मन मांहि बिचारिकै, कीनौ यहै उपाइ॥
हुतौ बिलाइत खिजरखां, लकब वोज्झरीवाल।
तासौं कछु पहिचांन हौ, यहु टेर्यो ततकाल॥
यो लिखि पठयो क्यामखां, तूं उठि बेंगौ आव।
मैं तोकौं दीनी दिली, जो लेवै को चाव॥

खिजरखानु पाती पढ़त, सिर ऊपर धरि लीन।
उतते दल करि चढ़ि चल्यो, गहर कच्छ नांकीन॥
लिख पठयो यों खिजरखां, खोजू गहर निवार।
चढ़ि आवौ ज्यों मिलि चलें, दिली लेंन के प्यार॥
पाती बाचत क्यामखां, चढ़्यौ बजे नीसांन।
खिजरखान सेती मिले, आनंदनि मुलतान॥
खिजर खानु पाइन पर्यो, अंक भर्यो चहुवांन।
यहँ कह्यो तब कौन दे, तुम बिन दिल्ली आन॥
क्यामखानु ऐसे कह्यौ, दिली दई करतार।
हौं तेरौ संगी भयो, तूं अब गहर निवार॥
तबही चढ़े मुलतौन ते, मतो कर्यौ मन मांहि।
राठोरनि कौं साधिकै, तब दिल्ली पर जाहिं॥
सबही मेवासै मलत, आइ लगे नागौर।
तामै चौंडा बसत हौ, राइनकौं सिरमौर॥
आइ दबायो कोट में, ऐसी कीनी दौरि।
चौंडा चढि नाहिन सक्यौ, मूवौ निकसिकै पौरि॥
चौंडा लीनौं मारिकै, भाज चल्यौ सब संग।
बहुत खदेरे ना लरे, सके कटाइ न अंग॥
कमधज कर बरछी लयें, भज्जै इहं उनिहार।
मांग खिगसे देखिये, मनहुं चले म्रिग डार॥

मान कवि

*

वर्णन की स्वाभाविकता, कथा का सङ्गठन, इतिहास की सत्यता आदि गुणों का जो सुन्दर स्वरूप कवि मान ने अपने ग्रन्थ 'राजविलास' में प्रस्तुत किया है, वह बहुत ही प्रभावपूर्ण और प्रांजल है।

—डा० मोतीलाल मेनारिया

मानसिंह

मान दरबारी कवि थे और उनकी कविता में रीतिकालीन दरबारी कवियों की सारी विशेषतायें मौजूद हैं।[1] अपने आश्रयदाता का अतिशयोक्तिपूर्ण विवरण, अत्यधिक प्रशंसा और एकांकी चित्रण, काव्य-रूढ़ियों और परम्पराओं का सचेष्ट निर्वाह, सूची-परिगणन की प्रथा का अवलम्बन, शब्द नाद के कृत्रिम प्रयोगों तथा अलंकारों के बलात् दिग्दर्शन के बावजूद भी मान कृत 'राजविलास' एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। इस महत्व पूर्ण ग्रन्थ के रचयिता कवि मान के संबंध में हमें विशेष जानकारी नहीं मिलती। फलस्वरूप अनेक विद्वान उन्हें राज्याश्रित, वीरकाव्य-प्रणेता कवि समझ कर भाट अथवा चारण मान बैठे हैं। डा० मोतीलाल जी मेनारिया के अनुसार ये विजय गच्छीय जैन यति थे।[2] उनके इस कथन का आधार कविराजा बांकीदास का 'वात संग्रह' है जिसमें एक स्थान पर उल्लेख है— 'मान जो जती राजविलास नांव रूपक राणा राजसिंह रो बणायो' अन्य विपरीत तथ्यों के अभाव में हमें मेनारिया जी के उक्त मत को मान लेने में कोई आपत्ति नहीं दिखती। इनका सम्पर्क मेवाड़-राजवंश से था अतः संभावना यही है कि ये मेवाड़ निवासी ही हों। मान के नाम को लेकर भी परेशानी है। डा० उदयनारायण तिवारी, कवि का मुख्य नाम 'मंडान' और उपनाम 'मान' मानते हैं किन्तु डा० मेनारिया के अनुसार पूरा नाम मानसिंह है। उन्होंने बताया है कि 'उदयपुर के 'सरस्वती भण्डार' में 'राज-

---

१ डा० उदयनारायण तिवारी—वीर काव्य पृष्ठ २४८

२ डा० मेनारिया—राजस्थानी भाषा और साहित्य—पृ० १६२

विलास' की एक हस्तलिखित प्रति सुरक्षित है। यह संवत् १७४६ की लिखी हुई है और इस ग्रन्थ की मूल अथवा प्राचीनतम प्रति है। उसकी पुष्पिका में इन का पूरा नाम मानसिंह लिखा था और कविता में ये अपना नाम कवि मान लिखा करते थे।[३] मेरी मान्यता में कवि का नाम मानसिंह ही होना चाहिये। केवल एक ही स्थल पर कवि का उल्लेख 'मंडान'+ नाम से हुआ है, अन्यत्र 'मान' ही लिखा गया है। अतः कहा जा सकता है कि 'मान' अथवा 'मंडान' कवि के नाम के लघु रूप थे।

'मान' ने अपने 'राजविलास' ग्रंथ की रचना मेवाड़ नरेश महाराणा 'राजसिंह' की प्रशंसा में की है। "राजसिंह" अपने समय के एक अति प्रसिद्ध, शूरवीर, प्रजावत्सल, स्वाभिमानी सुशासक थे। कवि ने राजसिंह का चरित्र चित्रण बड़े सुन्दर ढंग से किया है, यद्यपि ऐसा करने में उन्हें कई घटनाओं को छोड़ देना पड़ा है। अनेक व्यर्थ की घटनाओं की भरमार से बच कर कवि ने अपनी प्रतिभा का अच्छा परिचय दिया। अकाल पड़ने पर 'राजसमुद्र' के बांध का कार्य प्रजाहित के लिये राजसिंह द्वारा प्रारंभ कराया गया था। वे उदार थे और औरंगजेब की धार्मिक असहिष्णुता की नीति को नापसंद करते थे। अतः वे परम्परा के अनुरूप ही 'हिन्दुआसूरज' माने जाते थे 'ऐसे वीर सेनानी का जीवन चरित्र जिस तल्लीनता से लिखा जाना चाहिये, वैसी ही तल्लीनता से इसमें लिखा गया है। सचमुच यह हिन्दी का गौरव ग्रंथ है।[४]

---

३ डा० मेनारिया-राजस्थान का पिंगल साहित्य पृ० १११

४ डा० मेनारिया-राजस्थान का पिंगल साहित्य पृष्ठ ११३

+ उक्तपद में 'मंडान' शब्द क्रियापद है न कि संज्ञा वाचक। अतः 'मंडान' का अर्थ "रचा" होना चाहिये न कि 'मंडन कवि'

-कविराव मोहनसिंह

'राजविलास' की भाषा ब्रजभाषा है-किन्तु परम्परा प्रेम ने कवि को अनेक डिंगल-रूपों को ग्रहण करने को प्रेरित किया है। छंद भंग कहीं कहीं हुआ है। 'वयण-सगाई' का निर्वाह बड़ी लगन से किया। युद्ध वर्णन में भाषा में ध्वनि सौन्दर्य और ओज की मात्रा बढ़ जाती है। अलंकारों का प्रयोग तत्कालीन रुचि व अलंकार-प्रियता का द्योतक है। वर्णन चित्रोपम है और अनेक स्थलों पर जीवन्त जान पड़ते हैं। भाषा में राजस्थानी का प्रभाव स्थल स्थल पर परिलक्षित होता है।

कवि के जन्म, मृत्यु तथा जीवन की घटनाओं के संबंध में कोई जानकारी नहीं मिलती। इनका कविताकाल संवत् १७३४-४० है। जो कवि प्रणीत ग्रंथों में किये गये उल्लेखों से सिद्ध होता है।

कवि की दूसरी कृति 'विहारी सतसई' की टीका मानी जाती है। पहले मूल दोहों को दिया गया है और उसके बाद ब्रजभाषा गद्य में टीका दी गई है। पढ़ने से जान पड़ता है कि टीका सफल है।

कवि ने 'राजविलास' में आक्रमण, लूट, युद्ध आदि का जैसा वर्णन किया है, वह कवि की निरीक्षण शक्ति का द्योतक है। कवि ने छोटी से छोटी घटना को, कार्य व्यापार को अपनी पैनी दृष्टि से ओझल नहीं होने दिया है। विवाह में बारात की निकासी के समय पीलवानों का 'धत्त-धत्त' कहना और हाथियों का सूँड ऊपर करना भी कवि की निगाह से बच नहीं सके हैं।

मदोनमत्त धत्त धत्त पीलवाँन पट्टयं।
चरखिदार कुक्कए गयन्द जोर गट्टयं ॥
सुधाम दाँत गच्छ सुच्छ गुज्जए मधूपयं।
सुण्डाल माल के विकाल उद्धतं अनूपयं ॥

डा० तिवारी ने कवि पर आरोप लगाया है कि 'विरुदावली की झोंक में' कवि ने महाराणा राजसिंह को ब्रह्मा, विष्णु, महेश सब कुछ

बना देना तथा 'पुष्कर-गंग-प्रयाग' सभी को राणा की कृपा पर आश्रित बता देना अतिशयोक्ति ही कहा जायेगा। किन्तु इस प्रकार का आरोप कवि मात्र पर लगाना उचित नहीं है। उन्होंने तो राजाश्रित कवियों की परम्परागत शैली का अनुकरण मात्र किया है। इस प्रकार की अति-प्रशंसामूलक उक्तियाँ संस्कृत साहित्य में भी हैं। यही परम्परा प्राकृत व अपभ्रंश के द्वारा हिन्दी में आई जो हमें चंद, विद्यापति, भूषण जैसे कवियों में दीख पड़ती है। अतः इसमें कुछ भी नवीनता नहीं है किन्तु अनेक स्थलों पर वस्तुसंचय में उन्होंने बड़ी चतुराई बताई है। इतिहास की सभी घटनाओं को उन्होंने ग्रहण नहीं किया और न उप कथाओं को ही प्रश्रय दिया है ऐसा करने का उनका उद्देश्य शायद अपने कथासूत्र में प्रभावऐक्य बनाये रखना होगा। कहना न होगा कि कवि इस दृष्टि से काफी सफल है। 'कवि ने कई स्थानों पर पंचक, सप्तक आदि का प्रयोग भी किया है। इस प्रकार की रचना में सब छन्दों की अंतिम पंक्तियाँ एक ही होती हैं। जैसे 'सरस्वती वन्दना' में अन्तिम पंक्ति 'अद्भुत अनूप मराल आसनि, जयति जय जगतारिनी' इसी रूप में इक्कीस छंदों तक चली गई है। इस प्रकार की कविता पढ़ने में सुखकर प्रतीत होती है तथा उसमें सरसता भी अधिक आजाती है।[५] ऐसे सारे छंद अपेक्षाकृत अधिक मनोरम बन पड़े हैं —यथा—

झमकती झंझरि नाद रुणझुण पाय पायल पहिरनी।
कमनीय क्षुद्रावली किंकिनि अवर पय आभूषनी॥
कलधौत कूरम समय मन क्रम पाप पीड प्रहारनी।
अद्भुत अनूप मराल आसनि जयति जय जगतारनी॥

---

५ डा० उदयनारायण तिवारी वीरकाव्य पृष्ठ २५५

कवि मान हमारे एक प्रतिभाशाली कवि थे। इतिहास का घेरा लक्ष्मण द्वारा खींचे गये घेरे के समान होता है, जिसके बाहर जाने पर असफलता का रावण कृतित्व को हर लेता है, दूसरी ओर वह रंगीन चश्मे की तरह है जो दर्शक की निगाहों को अपने रंग में बलपूर्वक रंग देता है। ऐतिहासिक काव्य मानों दो घोड़ों की सवारी है, चढ़ना कठिन और गिरने का भय सदा। हर्ष की बात है कि ऐतिहासिक शव परीक्षा के बाद भी मान का 'राजविलास' इतिहास विरुद्ध घटनाओं से मुक्त है और दूसरी ओर यह अनेक स्थलों पर अच्छी कविता के उदाहरण प्रस्तुत करता है।

—o—o—

मान

राजविलास

राणा-श्रीराजसिंह-की दिग्विजय यात्रा

कवित्त

चढ़े सेन चतुरंग, राण रवि सम राजेसर।
मनो महोदधि पूर, वारि चहु ओर सुविस्तर।
गयवर गुंजत गुहिर, अंग अभिनव एरावत।
हयवर घन हींसन्त, धरनि खुरतार घसक्कत॥
सलसलिय सेस दल भार सिर, कमठ पीठि उठि कलकलिय।
हलहलिय असुर धर परि हलक, रयनि सहित रिपु रलतलिय॥

छंद पद्धरिय

सम्वत प्रसिद्ध दह सत्तमास। वत्सर सु पंच दस जिह मास।
सजि सेन राण श्री राजसींह। असुरेश धरा सज्जन अबीह।
निर्घोप घुरिय नीसान नद्द। सहनाइ भेरि जंगी सु सद्द।
अति वदन वदन वट्टी अवाज। सब मिले भूप सजि अप्प साज।
किय सेन अग्ग करि सैल काय। पिसन्न रूप पर दल धुलाय।
गुंजंत मधुप मद झरत गन्ड। चरखी चलन्त तिम अग्ग पच्छ।
सोभन्त चौर सिन्दूर शीश। रस रंग चग अति भरिय रीस।
सो झाल घटा मनु मेघ श्याम। टनकन्त घट तिन कंठ ठाम।
उनमत्त करत अग्गग आग्रज। बहु वेग जान पावै न बाज।
ढलकन्त पुट्ठि उज्जल सढाल। वर विविध वर्ण नेजा विसाल।

बोलन्त चलत बन्दी बिरुद । दीपन्त धवल रुचि शुचि बिरद ।
गुरु गाढ गेंद गिरिवर गुमान । पढ़ि धत्त धत्त मुख पीलवान ।
एराक आरबी अरब ऐन । सोमन्त श्रवन सुन्दर सुनैन ।
कासमीर देश काबोज कच्छि । पय पन्थ पौन पथ रूप लच्छि ।
बंगाल जाति से बाजिराज । काबिल सु कंक हय भूप काज ।
खंधार उत्तन केहि खुरासान । वपु ऊँच तेज वर विविध वान ।
हय हीस करत के जाति हंस । काबिलेसु किहाड़े भोर बंस ।
किरडीए छुरहडे केसु रत्त । पीलडे कंकली लेप चित्त ।
चंचल सुवेग रहवाल चालि । थेइ थेइ तान नच्चन्त थालि ।
गुन्थिय सुजान कर केस बाल । धेनि कंध वंक्क सोभा विसाल ।
साकति सुवर्ण साजे समुख्ख । लीने सुसत्थ हय एक लख्ख ।
रवि रथ तुरंग सम ते सरूप । भनि विपुल पुढि तिन चढ़ै भूप ।
पयदल सु सज्जि पौरष प्रधान । जंघालु जंग जीतन जवान ।
भट विकट भीम भारत भुजाल । साधर्म्मि स्वर निज शत्रु साल ।
निलवट सिन्दूर रत्त सु नैन । गय थाट घाट अप घटे गिनैन ।
धमकंति धरनि चल्लत धमक्कि । धर हरत कोट निज सबर धक्कि ।
पांकी सु पाघ बर भृकुटि वंक । निर्भय निरोग नाहर निसंक ।
शिर टोप सज्जि तनुत्रान संच । प्रगटे सु बंधि हथियार पंच ।
कमनीय कुंत कर तीन पुढि । मारंत शद सुनि सबल सुढि ।
गल्लाह करत गुज्जन्त गैन । बोलंत बंदि बहु बिरद बैन ।
धुरंत मु छ गुरु भरिय मान । गिनि कौन कहै पायक सु मान ।
यह भूप थट्ट दल मध्य धीर । सुरपति समान शोभा सरीर ।

श्री राजसिंह राणा सरूप। गजराज ढाल आसन अनूप।
शोभे सु छत्र बाजंत सार। चामर ढलंत उज्जल सचारु।
घन सजल सरिस दल घाघरट्ट। भापंत विरुद वर वन्दि भट्ट।
कालंकि राय केदार कत्थ। असकत्ति राय थप्पत समच्छ।
हिन्दु सु राय राखन सुहद। मुगलाँन राय मोरन मरद्द।
कविलान राय कट्टन सुकन्द। दुतिवंत राय हिन्दू दिनंद।
अरि विकट राय जाड़ा उपाड। बलवन्तराय वैरी विभाड।
अन पुट्ठि राय पुट्ठिय पलाँन। मलहलत रूप मधपानमान।
रायाधिराय राजेश रान। जगतेश नन्द जय जय सुजान।
बाजीनि चरन खुरतार बग्ग। मह अनड कट्टि कीजंत मग्ग।
झलझलिय उदधि सल सलिय सोस। कलकलिय पट्टिकच्छप असेस।
रजथान सबल जलथान रेनु। धुन्धरिग भान रज चढ़िग गेनु।
अति देश देश सु बढ़ि अवाज। नट्टे सु यवन करते निवाज।
हलहलिय असुर घर परि हलक्क। खलभलिय नैर पर पुर खलक्क।
थरहरें दुर्ग मेवास थान। रचि सेन सबल राजेशरान।
सुलतान मान मन्तो ससङ्क। बलवंत हिन्दु पति धीर बंक।
आयौ सुलेन अवनी अभंग। आलम सु भयौ सुनि गात भंग।

कवित्त

ऊचलि गए अग्गारो, दद मच्यौ अति ढिल्लिय।
हाजीपुर परि हबक डहकि लाहौर सु हल्लिय।
थर सल्यौ रिनथम्भ धमकि अजमेर सुधुज्जिय।
सूर्लो भयौ सिराज मगग भैलसा सु सज्जिय।

अहमदावाद उज्जैनि जन थाल मूंग ज्यों थरहरिये ।
राजेस राण सु पयान सुनि पिशुन नगर खरभर परिय ।

छन्द मुडुन्द डामर

चतुरंग चमु सिंधुर चंचल चक्र बिरुदरु दान ग्रहें ।
अवधूत अजेन तुरंग उतगह गगहि जे रिपु कट्टि रहें ।
अवगाद सु आयुध-युद्ध अजीत सु पायक सत्य लिए-प्रचुरं ।
चित्रकोट धनी सजि राजसी राण सु मारी उजारिय मालपुरं ।
आंत वद्दि अवाज भगी दिसी उत्तर पंथ पुरंपुर रोरिपरि ।
ग्रहकंत सु त्र्यंबक नूर ग्रहग्रह पग्ग महापति वज्जि पुरि ।
उडि अम्बर रेनु बहूदल उम्मडि सोपि नदी दह मग्ग सरं ।
चित्रकोट धनी चढ़ि राजसी राण सु मारि उजारिय मालपुरं ।
दलविटिय माल पुरा सु चहौं दिसि उप्पम चंदन आल अही ।
तहँ कीन मुकाम घुरंत सुत्र्यंबक सोच परयो सुलतान सही ।
नर नाथ रहे तह सत्त अहा निसि सोवन भारस धीर धरं ।
चित्रकोट धनी चढ़ि राज सी राण सु मारि उजारिय मालपुरं ।
धक धूनिय धाम सु कोट धकाइय गोपरू पौरि गिराइ दिए ।
ढम ढेर करी हट श्रेणि ढुढारिय कंकर कंकर दूर किये ।
पतिसाह सुदज्झन नैर प्रजारिय अंबर पावक भार भर ।
चित्रकोट धनी चढ़ि राजसी राण सु मारि उजारिय माल पुरं ।
तहाँ सौफरु पुंगिय लौंग तमोरह हिंगुल केसरि जायफलं ।
घनसार मृगमद लीलि अफीमि अपार अरन्त सु भारफलं ।
उहि अग्गि दमग्ग सुदिल्लिय उप्पर नाम परें सुडरे असुरं ।

चित्रकोट-धनी चढ़ि राजसी राण यु मारि उजारिय मालपुरं ।
नर पूरिय धोम-धराधर धुं धरि धाम भरे धम धाम धंसे ।
रवि विम्भति हौं दिन गोपरहयो लुटि लच्छि अनन्त सु कोनलखैं ।
सिकलाति पटम्बर सूफ सु अम्बर ईंधन ज्यों प्रजरै अगरं ।
चित्रकोट धनी चढ़ि राजसी राण यु मारि उजारिय मालपुरं ।
अति रीसहिं कीन इलातर उप्पर कंचन रूप निधान कढ़े ।
भरि ईभल जाबि सुलेच्चर सुभर चित्तहिं मृत्य अनेक बढ़े ।
जस धाँद भयौ गिरि मेरु जिती हरखे सुर आसुर नूर हर ।
चित्रकोट धनी चढ़ि राजसी राण यु मारि उजारिय मालपुर ।

जोधपुर युद्ध वर्णन

दोहा

गहिं झंडे अजमेर गढ़, अप्प साहि औरंग ।
सेवा लाख हय सेन सौ, रह्यो सुरङ्ग घन रंग ॥ १ ॥
सत्थ तुरँग सत्तरि सहस, सहिनादा सहि सैन ।
पठयौ शूर घर देश पर, लच्छि कमधज्जी लेन ॥ २ ॥
सो सिताब आवत सुन्यौ, सुन्यौ रहुवर सत्थ ।
हय गय पयदल पनह सम, सहस बतीस समत्थ ॥ ३ ॥
जोधपुरह तें पवन दल, पंच कोस सु प्रमान ।
आई पर्‌यो आनकि उदधि, आडंबर असमान ॥ ४ ॥
अनुग मुक्कि तिन अक्खि इह, सुनहु रहुवर घर ।
करो कलह हम सत्थ कैं, सौंपो घन सपूर ॥ ५ ॥

लेहु निमिप विश्राम लटि, आए हो तुम अज्ज।
कल्हि सही हम तुम कलह, कही बहुरि कमधज्ज ॥ ६ ॥
बित्यौ बासर बचही, परी निसा तम पूर।
छल करिके तब रिपु छलन, सजे रट्ठवर सूर ॥ ७ ॥

कवित्त

अद्ध रयनि तम अधिक, छलन रिपु इक्क कियो छल।
संड पंच सय शृंग, जोइ युग युगह लाल झल ॥
हंकिय सो वर हेट, उमय चर अरिदल अभिमुख।
अप्प चढ़े दिशि अवर, लिये वर कटक इक्क लख ॥
पेखिय चिराक प्रद्योत पथ, संड संमुख धाए असुर।
उततें मुबीर अजमेर के, परे धाइ अरि सेन पर ॥ ८ ॥

भुजंगी

परे धाइ अरि सेन पर रोस पूरं।
सजे सेन सापुद्द रट्ठोर सूरं ॥
किये कंठ लंकालि कंकालि कूरं।
झनंकीयु खग्गं बजी झाक भूरं ॥ ६
मची मार मारं जनं मूख भूखे।
मिले जानि गो मंडलं सीह भूखे ॥
सरं सोक बज्जी नमं ढंकि सारं।
भठक्के घनं सोर आराव मारं ॥१
घटक्कं धरा धुन्धरं पूरि घोमं।
चढ़े बीर बीरा रस लग्गि व्योमं ॥

फुरें याध हत्थं मद्दा कूह फुट्टी ।
इतें आसुरी सेन पच्छी उलट्टी ॥११॥
धये धींग धींगं धरालं धमक्के ।
चहो कोद तें लाकपालं चमक्के ॥
जपे इड्ड जप्पं जुरे जोध जोधं ।
करो कक बंके भरे भूरि क्रोधं ॥१२॥
मुरे सार सारं ननं मुक्ख मोरे ।
पटे टंटरं वान सन्नाह फोरे ॥
धरे शीश नच्चें कमंधं प्रचंडं ।
मही भिन्न भिन्नं रूरे रुंड मुंडं ॥१३॥
लरे दोन के शीश पच्छै लटक्कें ।
कहूं कठ ज्यों हड्ड जुट्टे कटक्के ॥
धने घाउ लग्गे किते वीर घूमें ।
झुकंते धुकंते किते फेरि भूमें ॥१४॥

हहक्कं तहक्कं किते हाय हायं । परे पक्खि खिन्नं झरे हत्थ पायं ।
परे दीप मज्झे किते ज्यों पतंगा । उर्द्ध छेनि छंद्धे करे होम अगा ॥१५॥
ममक्कंत श्रोनं कटे के मसुंडं । बिना दंत दंती परे है बिहंडं ।
बहू वान वेधे कुनंनन्वि वाजी । गए चून न्हैं पैदलं मीर गाजी ॥१६॥
शिवै संग है उतगगा मरोजा । चवसट्ठि लागी टगी चित्त चोजा ।
पिये श्रोन पानं बहे वाह पूरं । बहे वाहु जंघा भुजंत बिरूरं ॥१७॥
बिना सत्थ केते परे लत्थ पत्थे । रनं रास रच्चे रूपे पाइ हत्थे ।
मचे मुट्ठ युद्धं मनी मल्ल मल्लं । भरें मत्त मातिंगल ज्यों द्वै अडुल्लं ॥१८॥

किते कावरा काय ज्यो एन कंपें। नचे नारदं तु'वरू जैव जपें।
गहक्कैं गिवा चिंच गोमायु गिद्दं। लहक्कें पशु पंखिनीमंस लुद्दं ॥१६॥
किते हूंब जमदाड़ि कट्टैं कटारी। मरं झुं'भरा भम ज्यों रोस मारी।
तिनं मोह माया तजे गेह तीयं। पुकारें चकारे मनू छाक पीयं ॥२०॥
सरहें रुबाहें किते सेल सेलं। चुवै रत्त आरत ज्यों नीर चैलें।
तुटें चाप चर्म घजा वेग आनें। वरं युद्ध आतुद्ध में मो विहानं ॥२१॥
फिरे पील ऐसे परे पीलवाने। लुटें लच्छि लु'टाक पिक्खे सु प्रानें।
इयंनंपि रुंडं निपं छन्द हिंडै। वली वत्थ वड़ हत्थ रट्ठोर तंडै ॥२२॥
मनो पाय पायाबि छंडी मृजादा। मचे सेन सत्थं भगे साहिजादा।
मगी सेन सुलतान की मान्निमींत। चढ़ी जेति कमध्ज्ज सत्थे बदीतं ॥२३॥
निपं जेति मन्नी यु वग्गै निसानं। जपें देव जे जे सुरग्गे न पानं।
खलंखंडि खग्गों वरं खेत मुज्झयो॥बहू लुत्थि आलुत्थि किन ग्राह बज्झयो॥
परे मीर मैंमदरन इक्क पंती। गिन्नें कोन है पैंदलं और दन्ती।
भयो खेम पेमं मयै अप्प सत्थे। कहे मान यों छंद रट्ठोर कत्थें ॥२५॥

कवित्त

कलह जीति कमधज्ज सेन भग्गी सुलतानी।
भन्ड नेज्र झकझोरि तोरि डेरो तुरकानी॥
हय गय लुट्ट हजार लुट्टि केदलख धन लिन्नो।
स्वामि बिना संग्राम कहर अरि दल स किन्नो॥
पैंतीस कोस पच्छो पुल्यो सहिजादा सुबिहान को।
पगे सुवीर सब जोधपुर हठ राख्यो हिंदुवान को॥ २६॥

दोहा

परि पुकार अजमेर पुर, सुनि ओरंग सुविहान।
कमधज जरि जीते कलह सेन भगी सुलतान ॥२७॥
जाने हिंदू जोर वर न तजें टेक निदांन।
कलह किये नावे मुकर सोचे चित सुलतान ॥२८॥
करते वो हम ए करी राठोरनि सो रारि।
इन अग्गे फुनि असटैं हूवै पति साही हारि ॥२९॥
फिरि वसीठ फुरमा लिखि पठयो से पतिसाह।
करन मेल कमधज्ज पें रावन रस दुहु राह ॥३०॥

कुशल लाभ

*

[कुशल लाभ की रचनाशैली सहज और चित्ताकर्षक है। वर्णन वैचित्र्य द्वारा पाठक का ध्यान इधर उधर न भटकने देने की जो क्षमता एक कहानीकार में होनी चाहिए, वह इनमें पूरी पूरी पाई जाती है।

—डा० मोतीलाल मेनारिया]

कुशल लाभ

अनेक जैन आचार्यों द्वारा राजस्थानी साहित्य की अमर सेवा की गई है। ऐसे ही एक जैन आचार्य कुशल लाभ थे, जिन्होंने राजस्थानी भाषा और साहित्य की अपूर्व सेवा की। उसकी गोद अमर कृतियों से भरी और बदले में स्वयं चिरस्थाई यश के स्वामी बने। कुशललाभ का जन्म कहाँ हुआ? शिक्षा कहाँ मिली और उन्होंने दीक्षा ग्रहण कर आचार्यत्व कब ग्रहण किया, इस सम्बन्ध में अन्तर्साक्ष्य और बहिर्साक्ष्य के अभाव में निश्चित तौर पर कुछ भी नहीं कहा जा सकता है। अनुमान लगाया जा सकता है कि आप का जन्म विक्रम संवत् १५८० के लगभग हुआ होगा। इसी प्रकार से इनकी भाषा की भंगिमा के आधार पर कल्पना की जा सकती है कि इनका जन्म मारवाड़ में हुआ होगा। ये खरतर गच्छ के उपाध्याय अभय धर्म के शिष्य थे, ऐसा इनके ग्रन्थों की पुष्पिकाओं से ज्ञात होता है। किन्तु इनकी शिष्य परम्परा को जानने योग्य सूत्र प्राप्त नहीं है।

जैन कवियों की सबसे बड़ी विशेषता यह रही है कि उन्होंने बहुधा बोलचाल की भाषा में ही अपनी कविता रची है। इस प्रकार जहाँ एक ओर उन्होंने जनसाधारण के लिए उन्हीं की रोजमर्रा की भाषा में सुन्दर रचनायें प्रस्तुत की, उसी प्रकार अनजाने ही भाषा विज्ञान की दृष्टि से महत्वपूर्ण तत्कालीन भाषा के स्वरूप की भी रक्षा की है। कुशललाभ ने बोलचाल की भाषा में तो सुन्दर, सजीव रचनाएँ लिखकर अपने पांडित्य और भाषा चातुर्य का परिचय दिया ही है किन्तु उन्होंने 'पिंगलशिरोमणि' ग्रन्थ की रचना कर तत्कालीन साहित्यिक भाषा डिंगल पर अपने अधिकार की भी साक्षी प्रस्तुत कर दी है।

अद्यावधि प्राप्त ग्रन्थों की सूची निम्न है (१) ढोला मारूरी चउपइ (२) माधवानल काम कंदला चउपइ (३) तेजसार रास (४) अगड़दत्त चउपइ (५) स्तंभन पार्श्वनाथ स्तवन (६) गौड़ी छंद (७) नवकार छंद (८) भवानी छंद (९) पूज्य वाहण गीत (१०) जिन पालित जिन रक्षित संधि गाथा (११) पिंगल शिरोमणि (१२) देवी सातसी (१३) शत्रुंजयसघ विवरण।

कुशल लाभ के जीवन का अधिकांश समय राजस्थान और निकटवर्ती प्रदेशों–सौराष्ट्र–गुजरात आदि में ही बीता होगा, ऐसा इनकी भाषा के आधार पर ठहराया जा सकता है। इनकी भाषा में गुजराती का स्पष्ट प्रभाव दृष्टिगोचर होता है, जो एक जैन आचार्य होने के नाते स्वाभाविक ही था 'ढालामारू रीचउपइ' और 'माधवानल कामकन्दला चउपइ' इनकी बहुत लोक प्रिय रचनायें हैं। ये दोनों रचनायें परम्परा प्रसिद्ध प्रेमाख्यान है और प्रकाशित हो चुके हैं। 'ढोलामारू री चउपइ', का प्रकाशन नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित 'ढोलामारू रा दूहा' में परिशिष्ट के रूप में हुआ है। इसी प्रकार 'माधवानल कामकन्दला चउपइ' का प्रकाशन 'प्राच्य संस्थान, बड़ौदा' से प्रकाशित कवि गणपति विरचित 'माधवानाल कामकन्दला' के परिशिष्ट रूप में हो चुका है। पिंगल शिरोमणी का एक अंश 'परम्परा' के 'डिंगल कोष' अंक में निकल चुका है। स्तभन पार्श्वनाथ स्तवन' और 'पूज्यवाहण गीत' भी गुजराती विद्वानों द्वारा संपादित व प्रकाशित किये जा चुके हैं। शेष रचनाएँ अभी अप्रकाशित हैं।

जैसलमेर के रावल मालदेव के युवराज हरराज के लिए इन्होंने संवत् १६१७ में राजस्थान की प्रसिद्ध प्रेमकथा ढोलामारू' को चौपाई–बद्ध किया। इसी प्रकार 'माधवानल कामकंदला' की रचना भी इन्हीं युवराज के लिए की गई। प्रस्तुत दोन कृतियां बड़ी सरस और गतिमान है। इन्हें पढ़कर लगता है कि कुशललाभ को कहानी कहना आता था और ढंग

से आता था।' कथा-प्रवाह अक्षुण्ण बना रहता है। रोचकता में कमी नहीं आती। भाषा समतल जान पड़ती है; जो कवि के भाषा पर अच्छे अधिकार की द्योतक है। तीसरी महत्वपूर्ण कृति 'पिंगल शिरोमणी' ग्रन्थ है। प्रस्तुत रचना अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। यह समूचा ग्रन्थ मारवाड़ी भाषा में-तत्कालीन साहित्यिक भाषा में लिखा गया है और नाहटाजी के मतानुसार अद्यावधि प्राप्त मारवाड़ी भाषा के छन्द ग्रन्थ के रूप में सर्वप्रथम है और इसमें एक प्रकरण 'डिंगल नाममाला' का भी है। यह प्रयोग, सत्रहवीं शताब्दी तक मारवाड़ी के लिए 'डिंगल' का उपयोग शुरू होगया था, इस ओर संकेत करता है और इस प्रकार से विद्वानों की इस धारणा का कि डिंगल का प्रथम प्रयोग संवत् १८७१ में मिलता है, [1] खंडन करता है। इन सब दृष्टियों से कुशल लाभ की रचनाओं का महत्व असाधारण है।

जैन आचार्य होने के नाते कवि परिभ्रमणशील था। स्थान स्थान पर जाने आने का काम पड़ता रहा। देशाटन ने जहाँ कवि की भाषा को प्रभावित किया, वहाँ उसमें उदारवृत्ति का भी विकास किया कवि, द्वारा रचित 'पिंगल-शिरोमणि' ग्रन्थ का प्रारम्भ हिन्दू परम्परा के अनुसार मंगलाचरण के साथ किया गया है। गणपति, सरस्वती, शंकर, विष्णु और शक्ति की स्तुति की गई है। इसी प्रकार 'देवी मात सी' अथवा महामाई देवी मातसी ग्रन्थ में शक्ति की महिमा का वर्णन है। ये सब जैन परम्परा से मेल नहीं खाते। यह एक आश्चर्यजनक विरोधाभास है कि एक जैन कवि दुर्गा या शक्ति की महिमा का बखान करें। इस विचित्र तथ्य के सहारे अनुमान लगाया जा सकता है कि संभवतया ये रचनायें कवि ने तब लिखी, जब कि वह हिन्दू था और युवराज हरराजके गुरु रूप में था। राजपूत शक्ति के उपासक हैं और संभावना है कि कवि प्रदत्त

1. मोतीलाल मेनारिया—राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृष्ठ १५०

'देवीसातसी' की रचना भी जैसलमेर में अथवा क्षत्रिय परिवारों के सम्पर्क में की गई हो। जिस निष्ठा के साथ हिन्दू देवी देवताओं को याद किया गया है, वह संदेह पैदा करने के लिए काफी है। कुछ भी हो ; प्रामाणिक तथ्यों के अभाव में निश्चयपूर्वक इस विषय में कुछ भी नहीं कहा जा सकता। हो सकता है कि, कवि ने बाद में जैन धर्म व आचार्यत्व ग्रहण किया हो। यदि यह संभावना सच निकले तो ऐसे प्रतिभाशाली कवि को जिसने 'पिंगल शिरोमणी' ग्रन्थ लिखा, जैन धर्म अंगीकार करने के बाद अधिक काव्य रचना करनी चाहिए थी। जैन परम्परा और समृद्ध साहित्यिक विरासत का उत्तराधिकारी, प्रतिभापुत्र और भाषा, अलंकारादि काव्यांगों के अधिकारी विद्वान् कुशललाभ कीवृत्ति के अनुकूल अनेक चरित-कथा-काव्य लिखने का क्षेत्र मौजूद था। दो सफल प्रेम कथायें लिखने वाला कवि, जैन कथा काव्यों तीर्थंकरों, वासुदेवों, प्रतिवासुदेवों, बलदेवों आदि के जीवन चरित या आख्यानक काव्य न रचे, विचित्र बात ही कही जायेगी। हो सकता है कि कवि की अनेक रचनायें अभी तक प्रकाश में न आई हों। यदि मेरी कल्पना को कुछ आधार मिल सके, तो निसन्देह कुशललाभ पहली श्रेणी के कवि विपुल साहित्य-प्रणेता और उच्च कोटि के कृतित्व के अधिकारी माने जायेंगे। आशा है, विद्वान् इस दृष्टि से भी विचार करेंगे।

ऐसे हैं, हमारे कवि कुशललाभ ! सहृदय कवि, उदार वैष्णव, निष्ठावान् शाक्त, जैन आचार्य, साहित्यिक महारथी, कुशल अध्यापक, भाषा के स्वामी, इतिहास और अनुमान की उलझी हुई पहेली-राजस्थानी साहित्याकाश के एक जगमगाते हुए नक्षत्र !

कुशल लाभ

चउपई

पूगल नयरी मरूधर देस, निरूपम पिंगल नामि नरेस।
मारूवाडी नवकोटी धणी, उत्तर सिंधु भूमी तसु-तणी॥

मोटा नगर लोग सुखि वसइ, चावउ कुँवर कुल छइ चिहुँ दिसइ।
आठ सहस हयवर तसु मिलइ, पंच सहस पायदल तसुजुडइ॥

वरस त्रासइ वइठउ राजि, अरि भाजइ संभलि आवाजि।
तिणि वरस माहि निज प्राणि, साथी सुंधु मनावी आण॥

पनर वरस पोढउ राजान, रूपवंत रतिराय समाण।
पालइ राज सुखी आपणउ, तिणि अवसरि हूओ ते सुणउ॥

एकणि दिवसि हुँउस आपणी, भूप चढइ अहेडा-भणी।
कटक मह सारंगी केड़ि, वहिया जू जू ऊजड़ वेड़ि॥

रानि भमंतउराल्यउ(?थाक्यउ)राय, व्याप्योतृषा उन्हालइवाय।
वहतो राजा पडियो वाट, तरूवर वइठउ दीठउ भाट॥

तासु पासि छागलिजलि भरी, ठाकुर-तणी दृस्टि वे ठरी।
देखी भाट दीयो दीर्घायु, रेवँत-थी ऊतारयो रायु॥

निरमल सीतल पायउ नीर, सुखी हुओ नरराय सरीर।
भाट पासि तब पूछइ भूप, कवण काजि तुझ किसउ सरूप॥

नरवर गढ मुझ वसिवा ठाउ, मागउँ राउल हुँ पसाउ।
इह आव्यउ जस कीरति सुणी, पिंगल राजा भेटण-भणी॥

मोटउ नगर लोग सुखि वसइ, चावउ कुँवर कुल छइ चिहूँ दिसइ।
आठ सहस हयवर तसु मिलइ, पंच सहस पायदल तसु जुडइ॥
वसइ वारमइ वइठउ राजि, अरि भाजइ संभलि आवाजि।
पँचाग तेहनइ कीध पसाउ, भाटइ ओलखियउ नरनाउ॥
कहउ भट्ट, तईं कुण-कुण ठाम, कुण कुण देस, नगर कुण नाम।
वस्तु अपूरव दीठी जेह, मुझ आगलि परगासउ तेह॥
भाट कहइ संभलि मुझ वात, मइं दीठा मरहठ, मेवात।
दीठा वेग, गौड, वंगाल, कुंकण, नइ काविल, पंचाल॥
दीठौ सगलउ दखण देस, चतुर नारि तनि चंचल वेस।
मालव नइं काविल, मुकराण, कासमीर हुरमुज, खुरसाँण॥
सिंहल-द्वीप पदमिनी नारि, परम उलँघि रयणायर पारि।
गुज्जरात, सोरठ, गाजणउ, जोयउ देस तिहाँ स्त्री-तणउ॥
सिंधु, मंयालख, नै सोवीर, पूरव गंगा पहलइ तीरि।
दीठा मइं इणि परि वहु देस, आपणि हरिख भाट नैं वेसि॥
पिंगलराय कहइ तिणिवार, काँइ वली (?वमत) अपूरव सार।
दीठी हुइ, सा मुझनइ, दाखि, गम गोचर मन माहि म राखि॥
उत्तम दीठी वस्त अनंत, ते कहताँ किम आवइ अंत।
ताहरइ मनि जे अचरिज होइ, कहउ तेह, जिम दाखु सोइ॥
नेहइ मंडालि काई नारि, रूपवंत हुय राज-कुमारि।
अति अद्भुत सुंदर आकार, ते परणेवा हरस अपार॥
भाट भणइ सुणि पिंगलराउ, मुझ भुइ जोवा-तणउ सुभाउ।
परम चौस लगि इणइ वेलि, जोई वनिता देसि-विदेसि॥

रमणी घणी रूपि रतन्नि; निरखी एकाएक असंम।
तण जालोर नगर पदमनी, दीठी गउखि, जाणि दामिनि॥

दूहा

सिरि अढार आबू-धणी, गढ जालोर दुरंग।
तिहाँ सामँतसी देवड़उ, अमली आण अभंग॥

चउपई

सबल सेन,मोवन-गिरि-धणी, पटराणी झाली (सोढी) तसुतणी॥
तसु पुत्री ऊमा देवडी, जाणि विधाता सहइथि घडी॥

दूहा

चद-वयणि, चंपक-वरणि, अहर अलत्ता-रंगि।
खंजर-नयणी, खीण-कटि, चंदन-परिमल चंग॥
अति अद्भुत संसार इणि नारी रूपि रतन्न।
पंजर-नयणी खीण-कटि कुमरि सु कंचन वन्नि॥
जौ तुझ सारीखउ जुडइ भामिणि तिणि भरतार।
जोडी राही-कान्ह ज्यउँ करमेलै करतार॥

चउपई

भाट वचन राजा साँभली, कउतिग ए हियउइ अटकली।
कहउ भाट, का बुधि विनाणि, जिणि ए कारज चडइ प्रमाणि॥
राजा तणा कटक असवार, ते आवी मिलिया तिणि वारि।
भाट साथि लीधउ करि भाउ, आपण नयर पधारयउ राय॥
राजा पासि भाट ते रहइ, नित-नित नवा कथहता लहइ।
राजा मनि ऊमा-देवडी, नवि वीसारइ एक जि घडी॥

तेहि प्रधानमंत्रि, आपणउ, करइ आलोचन पणिहेवा-तणउ ।
तेइ जि भाट मूँकयउ परधान, देई अनर्गल वंछित दान ॥
साथइ जेसल नाम खवास, रायइ मूक्या मन वेसास ।
धणी मलामण थेहनइ फही, तूँ साचउ मित्रमाहरउ सही ॥
काँई बुद्धि सुमति केलवे, जिम तिम ए जोडी मेलवे ।
सर्वसाजहसुँ परवड्या, आवी जालोरइ ऊतरथा ॥
वंश छत्रीस साख माँहि वडउ, चावउ सामँतसी देवडउ ।
पिंगलराय-तणा परधान, आया सुणी दियउ महुमान ॥
भगति करी परधान-तणी, पूछइ, कहउ (वात) आपणी ।
पूगल-हूँती पिंगलराय, किणि कारणि मूँक्या इणि ठाइ ॥
एक वीनती छिव अम्हतणी, संभलि तूँ सोवनगिरि-धणी ।
कुँअरि तुम्हारी अपछर जिसी, पिंगलराय तणइ मनि वसी ॥
श्रवणे सुणीयउकुमरि-रूप, उछक थयउ आप मनि भूप ।
अम्हनइ मोकलिया इणिठाइ, कुमरि तुम्हारी मागइ राय ॥
वलतउ सामँतसी वोलीयउ, कुमरी नातरउ पहिलउ कीयउ ।
पहिली जूनागढनो धणी, माँगी हूँती राजा-मणी ॥
तेहनइ म्हे तउ ऊतर दियउ, वरसे वडउ चींद निरखीयउ ।
उदयचंद राजा चावडउ, छइ रिणधवल कुमर तसु वडउ ॥
सतर सहस गुज्जरधर-धणी, तिणी प्रधान मूँक्या अम्हमणी ।
कुमरि मँगावी मीनति करी, दीन्ही उमादे कुँअरी ॥
भाली अजीन मानी वात, रोगिलदेस गंड गुजरात ।
निरलपुरुस नइ नीलज नारि, किम तिहाँदीजइ राजकुमारि ॥

करते तउ कीधउ नातरउ, पाणि जाणे पडीयउ पाँतरउ।
कहइ बात जेसल सब कहिउ, तउहिव सीख अम्हानइ दीयउ॥
एह बात भाली साँभली, ते प्रधान तेडाया वली।
एक उपाय बुद्धि तिणी लहउ, वलतउ जेसलनइ इम कहउ॥
कुमरि-वात जोतिप ए कही, वरस एक लगी सूझइ नहीं।
पाछइ लगन-तणउ दिननहीं, एह बुद्धिम्हे व.रिस्याँ सही॥
कुमरि लगन परिणवा चार, आगलिएक दीह असवार।
मूँकेस्याँ रिणधवलाँह-भणी, सकिस्यइ नहीं आवि ते भणी॥
लगनि-थकी पहिलइ इक मासि, माणस मूँकेस्याँ तुम्हि पास।
छानी वात विमासी यह, संझि सहू को आविसी सह॥
आबू-तणी जात्रनइ मिसइ, लगन तणी वेला हुइ जिम्पइ।
आवि इहाँ ऊतरियो तुम्हें, कुमरी परणावेस्याँ अम्हें॥
उदयचंद रिणधवलह भणी, कुमरि विवाह लगनि दिन गिणी।
आगिमि एक दीह असवार, मूकेस्याँ परिणवा विचार॥
किम आविस्य इक दिन माँहि, लगन दोह वहि आधउ थाइ।
दोस न कोइ इम अम्ह तणउ, साच वचन होस्यइ इम आपणउ॥
सील मागि चाल्या परधान, दीधा अरथ गरथ बहुमान।
पूँगल नयरि पहूती आइ, मिलिया हरखइ पिंगलराय॥
समाचार सविस्तार कह्या, पिंगलराय हीय गहगह्या।
छाना नितु पुहचइ परधान, रलियात घ्या चिति परधान।
मास दीह आगलि असवार, आया पूगलि नयरि ति वारि॥
वरी सजाइ जानह-तणी, पिंगल चाल्या परणण-भणी।

सबलसेन सायइ बहु थट्ट, याचक चारण बाँभण भट्ट ॥
आप सरीखा राजकुमार, सायइ एक सहस परिवार।
पहिरण पट्टकूल मनि तणइ, चडीया आडम्बर घणइ ॥
वाजित्र वाज पंच सबद, रिण कोलाहल काहल सद्द।
सबल सेन साथइ परिवरया, जाइ जालोर नयरि ऊतरया ॥
चाचि (ग) दे सगली परि सुणी, परि माही परिणावा तणी ॥
लोक सहू पाखतियइ मिलया, देसी कटक देस खलमलया।
पूछइ प्रजा, कवण ए राय, कवण काजि, जास्यइ किणि ठाइ ॥
वलता ऊतर एहवा करइ, रखे कोई मन माहे डरइ।
पिंगल राजा पूगल-धणी, जास्यइ जात्रा आबू भणी ॥
गोघूलिक वेला जब हुई, ओचा जान पधारी जुई।
तब पिंगल तेडी सुभवार, परिणाव्यउ करि मंगलच्यारि ॥
निरखयउ नयणे पिंगलराय, राजाइ तसु आप्यउँ दाय।
रूपवंत नइं सुंदर देह, सोढी-मनि निरखतां सनेह ॥
सोलह वरसे परणयउँ राउ, अति सुकमाल असंभय काय।
बारह वरस तणी देवडी, लोक कडइ,--ए: जोडी जुडी ॥
एक कहइ, तूठउ करतार, पाम्यउ तिणि पिंगल भरतार।
सगे कीयउ बीवाह सुरंग, बिहुँ नामनि बाधिउ उछरंग ॥
भगति-जुगति कीजय अतिघणी, साहूहणी सा सोढी-तणी।
खरच्या गरथ नगरि जालोरि, गूँजइ गिरि वाजित्रह घोर ॥
अणहिलवाडा-पाटण सामि, बीजउ नफर गयउ तिणि ठामि।
उदयचंदनय किपउ जुहार, परणावउ रिणधवल कुँमार ॥

वलतउ पूछइ, वात विवेक; लगन विचँइ थायइ दिन एक।
पंथइ वहताँ माँदउ, पडयउ, तिणि कारणि मौडउ आपडयउ ॥
राजा कोप धरयउ मन माहि, नफर कढाव्यो बाहइ साहि।
राजा कहइ न बीजउ कोई, जउमुझ मागी परणई सोई॥
करीसजाईपरणण-तणी, चडी जान रिणधवलाँह-तणी।
घणी उतावलि मउ पसरयउ, सोवनगिरि नेडउ संचरयउ ॥
बीजइ दिनि चाचिगदे गइ, बइठउ मन माँहि करइ उपाय।
मत आवइ रिणधवलाँहँ जान, करिसी झूँझ पिंगलजान ॥
अलगाँ थी ऊपडती खेह, देखी राजा पडयउ संदेह।
सही एह रिणधवलाहसिँघात, विणसेस्यइहिव सगलीवात॥
नर थोडा पिंगल नरनाथ; सबल एह रिणधलह साथ।
माहोमाह झूझ माँडिस्यइ, कुलिकलंक माहरइ लागिस्यइ ॥
चाचिगदेमनि पडियो सोच, सोढी साथि करइ आलोच।
जउ जाणेस्यइ पिंगलराय, दीठइ कटकि छाँडि किम जाय ॥
करि आलोच तेहनइ कहउ, आपाँविहुँ नेह तउ रहइ।
थे पहुँचउ हिवपूगल-भणी, तउ अविहड होई प्रीति आपणी ॥
जदि गेवडि करिस्याँ अउझणउ, तदिहहलाणउ कुमरी तणउ।
पीहरि राणी राजकुमारि, पिँगलराय चाल्यउ तिणि वारि ॥
चाल्यउ कटक सहू दल चडी, पीहरि छइ ऊमा देवडी।
परणी नइ दल साथइ करी, पहुता कुसलइँ पूगल पुरी ॥
तब आवी रिणधवलह जान, मिलियो चाचिगदे राजान।
मोटा आल्याहिव किसिकाज, नफर तणउ दोस महाराज ॥

लगन वेला लगि जोई वाट, नाया तुम्हे थयउ ऊचाट।
नेइ लगन जउ किमहि टलइ, वलतउवरस पंच नवि मिलइ॥
तिथिवेला पूगतनउवखी, आन्ना जातउ आवू तणी।
अरहइ ते वहतउ आवीयउ, पिंगल राजा परणावियउ॥
रीसाणउ रिणधवल कुमार, वाप भणी मूक्यउ समाचार।
एहवउ छल चाचिगदे कीयउ, पिंगल राजा परणावियउ॥
उदयादीवइ, जाणी भाव, चाचिगदे इम खेली घात।
करी कोप मन माहि घणउ, तेडाव्यउ कुमर आपणउ॥
उदयचंद चाचिगदे राय, रोस चडया वे खेलई दाव।
माहोमाहि माँडाणउ खेध, वधियो वयर हुयउ वहुवेध॥
सोवनगिरि-हूँतीचिहुँ दिसइ, लूँसे देस कदेनहु वसइँ।
पिंगल राजा ते परि सुणी, माँडया सेन मनाइ घणी॥
उमादेम्यउँ अविहड प्रीति, वालपणा लगि लागी चीति।
कहवारयउ चाचिगदे भणी, आवाँ मीर अम्हे तुम्ह तणी॥
वलतउ चाचिगदे वीनवइ, रखे कटक ले आवउ हिवइ।
नही सोनगिरि केहनइ पाडि, जास्यइ आपण ही गढ धाडि॥
हिव ते जेसल नामि सनाम, मनि आरम्भइ सुबुद्धि विमासि।
पूगल माहि बुद्धि केलवइ, गोवल सहीं गोवर मेलवइ॥
धवल धेनुवे धवलइ वरणि, सारीखा वाछडा सुवर्ण।
घोडा-तणी चालि माहि आणि, पाइगहइ वांध्या तिणि ठाणि॥
घोडा समउ ग्रास ते लहइ, मापरिए वांधी साथइ रहइ।
पीयइ दूध मनगमता ग्रास, देगइ ते हारवट व्रहास॥

वेग्रासणी वहिल ग्रति चग, कीधी एक ग्रपूरव ग्रंग।
वेवइ धवल जोतरिया तेणि, जाणे पंखी चाल्या जेणि॥
जेसल ग्राप चडइ ग्रसवार, कोस वधरइ वारावार।
जोयण एक घड़ीमइ जाइ, हारइ नहीं न थाका थाइ॥
इम दीहाडी करइ ग्रभ्यास, जाँ लगि हूग्रा वारह मास।
जोजन ग्रउढ घडी माहि नीम, वली जाइ ग्रावइ करि सीम॥
इणि परि धोरी सीखवि दोई, राजा प्रति वीनवियउ सोइ।
वरस एक जव पूरण हूवा, तव पिंगल चितातुर थया॥
इक ग्रापणउ पुरुष पाठवइ, कहउत ग्रावणउ कीजय हिवइ।
तउ वहि जा राजा नइ मिलयउ, मारग सहू सुघउ साँभलयउ॥
धवला ग्रासण मंडइ राउ, तउही वँधी न वइठइ काइ।
घणी सभाई थई ग्रउभणइ, ग्रेवडि छइ ऊमादे-तणइ॥
साथइ जउ गाडर ग्रसवार, ग्राथर ऊठ चलावइ भार।
सवल साथ जउ वाटइ वहइ, तउ रिणधवल नहीं मा सहइ॥
सु (?रू) धो वाट कटक संग्राम, ग्रनरथ थास्यइ जाइमाँम।
चाचिगदे तिणि ग्रागइ वहू, कही वात मारगनीसहू॥
जउ प्रछन्न ग्रावइ एकलउ, पहिली ग्राणउ कीधउभलउ।
कुमरी घरि पुहुचावी पछइ, सगली वात सोहिली ग्रचइ॥
ते ग्राव्यउ जेसल परधान, हरखित मिलयउ पिंगल राजान।
मारग-तणी वात सहू कही, तेवउ भूफाम करियो सही॥
एकणि वहिलइ जेसल साथ, इम ग्रेवडि माँडी नरनाथ।
ऽतलउ कहिइ माहरउ मान, कहियउ चाचगदे राजान॥

वीरभाण

वीरभाण की कृति 'राजरूपक' कवि के आश्रयदाता नरेश अभयसिंह से उपेक्षित रह कर भी महत्वहीन न मानी जा सकी। तीन चार पीढ़ियों के बीत जाने पर भी कवि का इतिहास विद्वानों व काव्यप्रेमियों को विस्मृत नहीं हुआ था और इसी महत्ता की अनुभूति ने जोधपुर नरेश महाराजा मानसिंह को 'राजरूपक' सुनने को प्रेरित किया और इस प्रकार उस उपेक्षित काव्य ग्रन्थ ने अपनी निजी विशेषता के बल पर राजादर पा लिया।

रतनू वीरभांण

मारवाड़ नरेश अभयसिंह के आश्रित कवि वीरभांण रतनू शाखा का चारण था और घड़ोई ग्राम का निवासी था। संवत् १७४५ में जन्म लेकर यह स्वाभिमानी कवि ४७ वर्ष की आयु पाकर स्वर्गवासी हो गया। राजदरबारी कवियों पर यह आरोप लगाया जाता है कि वे अपने आश्रयदाताओं के संकेत के अनुरूप कविता करते हैं, जरूरत पड़ने पर स्वरचित कविता को बदल भी देते हैं। वीरभांण एक अपवाद जान पड़ता है।

देहली के बादशाह मुहम्मदशाह ने अपने गुजरात के सूबेदार सरबिलंदखाँ के अविनय से नाराज होकर गुजरात का सूबा महाराजा अभयसिंह को दिया। महाराजा ससैन्य अहमदाबाद गये। सरबिलंदखाँ से खूब जम कर युद्ध हुआ और जयश्री ने राठौड़ों को ही वरमाला पहिनाई। इस युद्ध में महाराजा के साथ अनेक चारण थे, उनमें से दो मुख्य थे–कविया करणीदान और रतनू वीर भांण। इन दोनों कवियों ने अहमदाबाद के युद्ध का आँखों देखा हाल लिखा। करणीदान का ग्रन्थ 'सूरज प्रकाश' और वीरभांण का ग्रन्थ 'राजरूपक' कहलाया अपने अपने ग्रन्थों की समाप्ति के बाद दोनों कवियों ने महाराजा को अपने ग्रन्थ सुनाने चाहे। अशान्त वातावरण, राजनैतिक उथल पुथल का युग, हर समय शत्रु का लगा हुआ खटका, कभी यहाँ तो कभी वहाँ, ऐसे समय में महाराजा को कविता सुनने का अवकाश कहाँ? दुश्चिन्ताओं के बवंडर में काव्यरसास्वादन के उपयुक्त मनः स्थिति कहाँ से आये! महाराजा ने दोनों कवियों से उनके ग्रन्थों का परिमाण पूछा। जानकारी

मिलने पर उन्होंने ऐसे विशाल-काय ग्रन्थों को सुनने में अपनी असमर्थता प्रकट की और कवियों से कहा—'यदि आप अपने ग्रन्थों का सार सुनाना चाहें, तो मैं सुनने को तत्पर हूँ'। कवि करणीदान अपने ग्रन्थ 'सूरज-प्रकाश' का सार 'विड़द-सिणगार' के रूप में कर सुनाया और फलस्वरूप अपार सम्मान, विपुल ऐश्वर्य और कीर्ति का अधिकारी हुआ। महाराजा ने उसे जागीर, लाख पसाव और अभूतपूर्व सम्मान दिया। किन्तु जब कवि वीरभांण की बारी आई तो उसने नम्रतापूर्वक कहा—'अन्नदाता! यह काम मुझ से नहीं होगा। मैंने अपने ग्रन्थ में फालतू की एक भी बात नहीं लिखी। अब उसमें काँट-छाँट कैसे करूँ? अपनी कविता की यह निर्दय हत्या मैं स्वयं कदापि न कर सकूँगा। क्या कहीं गागर में सागर भरा जा सकता है? मुझे क्षमा किया जाय।''

महाराजा वीरभांण की रचना 'राजरूपक' नहीं सुन सके। और कवि पुरस्कार द से वंचित ही रह गया।

इस घटना से हमारे सामने कवि वीरभांण का एक तेजस्वी, पौरुष के दर्प से युक्त, स्वाभिमानी और कलावेत्ता की मूर्ति उभरती है। लगता है कि वह प्रबुद्ध और वास्तविक कवि था। कविता से बढ़कर अन्य कोई वस्तु उसके लिए बड़ी नहीं थी, महत्वपूर्ण नहीं थी। यश, अधिकार, सम्मान और ऐश्वर्य के लिये लोग क्या क्या नहीं करते? वीरभांण का एक साथी व्यवहारिक मार्ग पर चल कर इन चारों सांसारिक दृष्टि से दुर्लभ वस्तुओं को पा चुका था। वीरभांण भी चाहता तो वही मार्ग अपना सकता था। वह दरवाजा उसके लिये भी खुला था। किन्तु उसने दृढ़तापूर्वक उस मार्ग पर बढ़ने से इन्कार कर दिया। सभी सांसारिक प्रलोभन, परिजनों के आग्रह और हितचिन्तकों की सलाहों के बावजूद उसका कवि दब न सका। अपने दरवाजे से लौटती देख लक्ष्मी के पीछे कौन बावला हो नहीं भागता? नहीं भागता तो केवल वही, जिसका अपने पर अधिकार है, अपनी वृत्तियों पर निग्रह है। इतिहास में ऐसे प्रबुद्ध कवियों के दृष्टान्त विरले हैं जिन्होंने अपने

अन्तर के कवि की पुकार से बढ़कर किसी अन्य को नहीं माना और ऐसे व्यक्ति वास्तव में महान् है।

वीरभाण ने 'राज रूपक' को एक काव्य ग्रंथ बनाया किन्तु इसे बनाते बनाते वह इतिहास लिख गया। इतिहास की भूमि पर, तटस्थ वैज्ञानिक दृष्टिकोण के रस से सिंचित, 'राजरूपक' वल्लरी का जन्म हुआ। कवि ने शुद्ध ऐतिहासिक दृष्टि से अपने इस काव्य ग्रंथ का प्रणयन किया है। ग्रंथ ४६ प्रकाशों में बाँटा गया है। कविने परम्परागत पद्धति को अपना कर सृष्टि के प्रारंभ से अपने आश्रयदाता महाराजा अभयसिंह जी की वंशावली की स्थापना की है। तेजस्वी व बहु प्रतिभा सम्पन्न कवि, योद्धा, धर्मरक्षक महाराजा जसवन्तसिंह के वर्णन के साथ ही कवि ने इतिहास कार का बाना पहन लिया है। तिथि, वार, संवत् समय सभी का उल्लेख कवि ने किया है। किस युद्ध में किस पक्ष से कौन कौन योद्धा लड़े। वे कहाँ के थे, कैसे थे, सभी का ब्यौरा बड़ी तन्मयता से दिया गया है। छोटी से छोटी घटना कवि की निगाह से बच नहीं सकी। राजनैतिक छल, संधिविग्रह, कूटनीतिक चाल सभी को कवि ने यथातथ्य और अत्यंत सादगी से वर्णन किया है। समझौते का प्रस्ताव लेकर कौन दूत आया उस समय कौन कौन सरदार और सामन्त दरबार में हाजिर थे। कैसे बात चली। तर्क वितर्क हुए कवि ने इन सभी तथ्यों पर ध्यान रक्खा है। इतिहास के अध्येताओं और तत्कालीन समाज स्थिति के विद्यार्थियों के लिये इस काव्य ग्रंथ की उपयोगिता निर्विवाद है। ऐसे तथ्यमय ग्रन्थ को संक्षिप्त करना संभव था भी नहीं, अतः कवि महाराजा अभयसिंह से लाख पसाव पाने से वंचित रह गया।

अभयसिंहजी के पाँचवे वंशज महाराजा मानसिंह जो स्वयं गुणी, संगीतज्ञ, विद्वान और कवि थे, उन्हें यह प्रवाद सुनने में आया सुनने में आया। फलस्वरूप उन्होंने वीरभाण के वंशजों को बुलवाकर इस ग्रंथ

को सुना। वे कवि के कौशल से प्रसन्न हो उठे और उन्होंने वीरमांण के पुत्र को 'घड़ोई' गांव इनायत करदिया। मानसिंह द्वारा अपने पूर्वजों की भूल का प्रतिकार क्या दिवंगत वीरमांण की आत्मा को शान्ति दे सका होगा।

कवि ने अपने ग्रंथ में अनेक डिंगल व पिंगल के छन्दों का प्रयोग किया है। दोहा,चौपाई,छप्पय, वेअक्खरी, गाथा, त्रोटक, भुजंगी, चौरस, नाराच, पद्धरि, हणुफाल, वेताल, आदि विविध छंदों का उपयोग किया है,भाषाडिंगल है और प्रसाद गुण सम्पन्न है। बहुधा प्रयुक्त किये जाने वाले अनुस्वार अथवा द्विचवर्णों के प्रयोग से कवि ने अपनी कविता को बोझिल नहीं बनाया है। इसी कवि का एक अन्य ग्रंथ 'भागवत दर्पण' भी पाया गया है। नाम से ही ग्रंथ के विषय में हम अनुमान कर सकते हैं कि यह भागवत को आधार कर लिखा गया ग्रंथ होना चाहिये।

रतनू वीरभाण

'राजरूपक' से

मंगलाचरण

कमल-नयन मंगलकरन, श्री राधा घनस्याम।
कवि-भ्रम-भ्रमर म सोच कर, सिमरि नांम अभिराम ॥ १ ॥

छंद छप्पय

मोर मुकुट वनमाल, माल तुलसी नव मंजर।
रुचि कुंडल कल रतन, तिलक मंजुल पीतांबर ॥
मणि कंकण अंगद, अमूल्य-पद हाटक नूपर।
नवला सी नवरंग, संग भुज बंसी सुन्दर ॥
वप रूप ओप नव घन वरण, हरण पापत्रय-ताप-हरि।
गुण मांन दांन चाहैं सु ग्रहि, कवि सुग्यान ओ ध्यान करि ॥ २ ॥

सुन्दर भाल विसाल, अलक सम भाल अनोपम।
हित प्रकास म्रदु हास, अरुण वारिज मुख ओपम ॥
कृपा-धाम नव कंज, नयण अभिराम सनेही।
रुचि कपोल ग्रीवा त्रिरेख, छवि वेम अछेही ॥
निरखत संत सनमुख निजर, करण पुनीत सु ग्रीव कर।
गुण मान दान चाहैं सु ग्रहि, कवि सुग्यांन औ ध्यान कर ॥ ३ ॥

श्री हरि नाम सँभारि, काम अभिराम कियारथ।
अरथ धरम अपवरंग, दियण जग च्यार पदारथ॥
लियां नाम सुख लाभ, व्याधि दुख आधि न व्यापै।
कुल सज्जण थिर करै, अरि वडपण ऊथापै॥
नर नाथ जांण रालै निजर, वाण वखांणां विसतरै।
व्रजराज लाज मोगी वरय, काज सिद्ध मोटा करै॥ ४॥

छंद वेअक्खरी

प्रथम सुमर इण विध परमेस्वर।
पूरण अघ प्रताप अपंपर॥
संभरि तिण पाछै अग्रेसर।
दया कृपा कर श्री लंबोदर॥ ५॥
अविनासी अविकार असीमा।
सुभ गुण दियण अनुग्रह सीमा॥
पूरण पुरस पुराण प्रमेसर।
सुकवि सधार वार अग्रेस्वर॥ ६॥
जिण गुण माखि प्रमा(मा)कवि जांणै।
प्रगट ब्रह्मवैवर्त पुरांणै॥
लख पुराण निसचै कर लीजै।
जिण थी परै न को जांणीजै॥ ७॥
सिव संभव सिव रूप सुरेसर।
सिव गुण दियण प्रणंम कवेसुर॥

अति लघु तिकौ सरण तक आवै।
पात्र गुणे सुज वडपण पावै ॥८॥
अगज गवर गिरा गुण उज्जल।
गम कविता दायक पग मंजुल॥
समरौ प्रथम गणेस सगत्ती।
पाछै गुण गावां छत्रपत्ती॥ ६॥

दुहा

सारद ससि सारद वदन, सारद कविता सुद्ध।
अदसारद पारद उकति, करण विसारद बुद्ध ॥१०॥

छप्पै छंद

गुण सागर दुस्तर अगाध, अति वाध अपारण।
वेल निजर विद्दुसां, असह कवि भ्रमर अकारण॥
कला तिमंगल किता वरण गुण दोस विचारक।
पवे सिखर इम गुपत किया गुण औगुण कारक॥
उर भरम छेह लैणा अगम असकत उयम उक्कती।
कर मात्र पार गुण सर करण साची नांम सरस्वती ॥११॥

जोधपुर का घेरा

आगरै सा अजमेर सुं, कूचं करतां वार।
वणी अनायत खानं सुं, कांनि सुणी पुकार ॥१२॥
गढ जोधाणौ घेरियौ, ग्रहियौ कोट निवांण।
सुण असपत तीन्ही पढ़ा, दीन्ही मदत सिताब ॥१३॥

खाग घुमंती मारवे, वींट लियाँ ओघांख ।
सज्भे कोट मलेच्छ दल, वज्जे बाण कबाख ॥१४॥
चल चहुवे कल साखुली, चल चेल पुर हलचल्ल ।
आया वार निदान री, वीस हजार मुगल्ल ॥१५॥
रवि उगँ साहावदी, खान इनायत वेल ।
आमुर आयाँ खेड़ियां, ज्यों सागर ऊफेल ॥१६॥
निजर पड़ंता साह दल, भड़ नवकोट अभंग ।
वेल अभागा भल्लियां, साम्हा किया तुरंग ॥१७॥

छंद भुजंगी

अटी सेन राठौड़ जंगां अघाया ।
उठी खानजादा विना ग्यान आया ॥
बजे त्रंब जंगी गडे नाल बग्गी ।
लजाव्रंत जंगी दुहूँ दीठ लग्गी ॥१८॥

मचे जंग वेसंग हिंदू मुगल्लं ।
भ्रहक्के नफेरी ढमंके तवल्लं ॥
अभाए सबद्द बजे अप्रमाणं ।
कला सोर प्राणं सधाणं कबाणं ॥१९॥

भिडे मल्ल पाणं जिदी जुंभतांणं ।
पठाणे कमंधं कमधे पठाणं ॥
खलां श्रोण रंगे वहे खग्ग खग्गे ।
अकासे घटा जांण माला उमंगे ॥२०॥

धुवे सार मारं घड़े धार धार ।
हुवै वीरहक्कं हजारे हजारं ॥
छटा ज्यों विछूटै भुजे सेल छूटै ।
लगे अंग तूटै अनोअन्न खूटै ॥२१॥
प्रवाहै खडग्गं झड़ै हत्थ पग्गं ।
लहै जांण आरा धरं काठ लग्गं ॥
मुड़े सालले सालले पै मुडक्कै ।
झड़ां ओझड़ां सांड ज्यौं मांड झुक्कै ॥२२॥
किता अग्र पाछै किता चक्र कुंडे ।
तक्के किता साहता वाह तुंडे ॥
भिदे सार सेले कटारी मलक्कै ।
हिलालां कि सामुंद्र वेला हलक्कै ॥२३॥

दुहा

वेटो रावल सबल रौ, गजोधर तिण वार ।
अस जाडां बिच ओरियौ, झल्ले खग्ग दुवार ॥२४॥
साथ किसोर महेस का, हाथ सकज्जा सीम ।
जादव रण पण अग्गला, जोर अरज्जण भीम ॥२ ॥
वग्गां खग्गां साड दलं, माडेचा पण मंड ।
वार विखम्मी झेलणां, आंदू नेम प्रचंड ॥२६॥

छंद अरध भुजंगी

जुटे जदुराणं, उभै अप्रमाणं ।
हुई वीरहक्कं, कमाली किलक्कं ॥२७॥

वहै खग्गधारी, करग्गे कटारी।
तुटे मुंड तुंड, कला नाट कुंडं ॥२८॥
खणंके खडग्गं, पड़े हत्थ पग्गं।
कती धार कैसी, जरी दंत जैसी ॥२९॥
घणा रोद्र घेरे, फिरे चक्र फेरे।
मयांणे मटल्ले, मही जांण हल्ले ॥३०॥
अने अग्रवांणी, वजे खग्गवांणी।
कवाड़ी सकट्ठां, कटे जांण कट्ठां ॥३१॥
बडे घोक चावां, घडी दोय घावां।
..........................॥३२॥

माटी जूटा भूप छल, गजड़ अने किमोर।
दल मग्गां रहिया पगां, दाखै उग्गां जोर ॥३३॥
पाड़ खलां रण पाटियाँ, जाड प्रवाड़ै लज्ज।
गढ जोधाणैं गोर में, गढ़ जोधाणैं कज्ज ॥३४॥
अत जीतौ चीतौ समर, जादम पड़िया जोड।
लड़ जुड़ खग्गां जोहलैं मुरड़ चले राठौड ॥३५॥
वीर भटक्कै वज्जिया, वे रणधीर दुबाह।
अंग वटक्के उड्डतां, सेन अटक्के माह ॥३६॥
थासकरन्न पिराग तण, पडियौ खाग भ्राड़।
सुतन सजीपै मोज सम, जल माटीपै जाड ॥३७॥
जादम जाडा वज्जिया, रामो नैं उदल्ल।
विच सुरपुरां वज्जाड़िया, अछरां तणां महल्ल ॥३८॥

आहव चांपावत अखै, लड़ कूंपावत लाल।
कीधौ हार सुधारतां, सिव तिण वार खुसाल ॥३६॥
धांधल धारां ऊतरै, मोटी राड़ मुकन्न।
जूटौ दल जमनायणां, तूटौ खागां तन्न ॥४०॥
ऊँची रीत उजालणौ, खीची सुन्दरदास।
खल सोखे पड़ियौ खहे, पोखे चंद्र प्रहास ॥४१॥
रोहड रूके ऊतरे, पाल तणौ जगनाथ।
आगै पडियाँ सूरमां, भड़ियौ खग्ग समाथ ॥४२॥
समहर हिंदू दोय सौ, मेछ पड़े सत च्यार।
मकत गरज्जी गीभ सूं, यां वज्जी तरवार ॥४३॥
आसाढाऊ सुद नवमि, गुण आगे रिख(१७३७)लेख।
जिके समत्सर जोधपुर, समहर थयौ विसेख ॥४४॥

ऋतु वर्णन

छंद बेताल

वरसात भर धर परम सुख वरिख उमड़ि जलधर आवही।
घण घोर सोर मयोर रस घण घटा घण घहरावही ॥
दरसंत आमखि रूप दामणि प्रगटि मिट तम प्रगट ही।
दग मिलत अमिलत चपल देखत अवनि परजन अघट ही ॥ १ ॥
जल जाल माल विसाल नभ जुत उरड़ भड़ अण पार ए।
मिटि जलण धरणि विनोद मांनव भूरि सर जल भार ए ॥
मरजाद मर सर सरिति अनुमिति छूटि जाव अछेदयं।
पड़ि खाल थल थल ताल पूरति खह सरूप अखेदयं ॥

प्रति खेत अनतन लहरिनिस प्रति पसरि वेल अपार ए।
त्रिम निजर नरपति हूंत भूत जग वधै दिन दिन वार ए ॥ २ ॥

दूहा

मंडोवर गति मेड़तैं, बह पह किया विलास।
श्रावण कादव सोमियौं, आयौं भाद्रव मास ॥ ३ ॥

छंद वेताल

वरसंत भाद्रव मास वादल सिखर उज्जल सांमला।
सुखि राज कोरण गाज्र अतिसय अंब नय मय ऊजला ॥
फिरि माचि करदम फूल प्रति फल ओप रूप अनोप ए।
लखि प्रिया जांणी मनाय लीधा अंग नवरँग ओप ए ॥ ४ ॥
नित सूर गरजत नूर नेरत पूर सुख पुर गांम ए।
मन भ्रमत फिरि हरि सेव मिलतां वर्ण जग विसराम ए ॥
अति सोम गोधन हरित अवनी सरित गत जल सोम ए।
प्रति चरण जांणि सु राज पायां लाज निज व्रत लोम ए ॥ ५ ॥
त्रिण वेल तर आछादि गिर वन अवनि पंथ अगम ए।
मन जांणि तापसि विवसि धाया भ्रमता फिर पड़ि भ्रम ए ॥

दुहा

यों वरखा रितु ऊतरी, आवी सुरद सुमाय।
पित्रेसुर कीजै प्रसन, पोखीजै रिख गाय ॥ ६ ॥

छंद वेताल

आसोज पूरण जगत आसा मोम अन अति मार ए।
सोमंतु जंतु अनंत सुखमय सुखद संपति सार ए ॥ --

सर सरित निरमल नीर सुन्दर अमल अंबर-ओपयं ।
किरि सुंबुधि विधि सत संग कारण लुबुध होत विलोपयं ॥ ७ ॥
सिघ अवन कन्या हूँत सभव अगनि जोति अनोप ए ।
सुभ दृष्ट भूप निहारि प्रज सहि अघट किरि सुख ओप ए ॥
महि प्रगटि रास विलास मंगल अमल रेण अकास ए ।
सोभंति रिख गण चंद्र सोभा किरण जगमग कास ए ॥ ८ ॥
रस झरत अम्रत सरद राका रेण वण जण कारणं ।
दिन सुखद राति विलास दायक हित चकोर निहारणं ॥

दुहा

सुख लेतां सुरधर सुवह, वीतो मास कुंवार ।
ऊपति कातिक आवियौ, सोभा दियण संसार ॥ ६ ॥

छद बेताल

दिन रात सम तुल रासि दिनकर सरकि अनुक्रमि सरवरी ।
त्रिय जीत पति गुण परखि चखि सुख सकस पखि जिम सुंदरी ॥
सुभ चित्र मंदिर चौक सुंदर ओपि रूचि राय अंगणे ।
तन सदन सोभित करण तरणी विविध मनि उदम वणे ॥१०॥
महि नयर घर प्रति दीप मंडित माल जोत मनोहरं ।
किरि व्योम नांखत्र परखि कमला सोम धारत सुन्दरं ।
पोसंप्प पांन कपूर प्रियवो वणत जण धनवांन ए ।
इघकार तीरथ जात उदम -आदि सुरनदि आन ॥११॥
दिगविजै कजि नरनाथ सजि दल प्रबल उच्छव पेखियौ ।
सब वरण नव सुख नवल सोभा विमल रूप विसेखियौ ॥

दूहा

सुख धरती वरखा सरद, आगम अगहन मास ।
पेखेवा जोधांणपुर, प्रगटे हरख प्रकास ॥१२॥
मुरधर पति सूं मेड़तै, अभौ हुवौ असवार ।
प्रथीनाथ जोधाणपुर, आयौ हरि अवतार ॥१३॥

करणीदान

※

करणीदान कविया एक राजनीतिज्ञ, वीर सैनिक और विद्वान–तीनों साथ ही था और उसके व्यक्तित्व में प्रत्येक पक्ष के संबन्ध में काफी प्रमाण उपलब्ध हैं। राजनीतिज्ञ की हैसियत से उसने रियासत के भीतरी झगड़ों की सभी घटनाओं में बड़ा महत्वपूर्ण भाग लिया। ······उसकी बहादुरी का सा उदाहरण स्वयं राजपूतों के इतिहास में भी शायद ही कहीं मिलेगा। उसकी विद्वता का परिचय हमें उसी के ग्रन्थ 'सूरजप्रकाश' की भूमिका से लगता है।

—कर्नल जेम्स टॉड

करणीदान

राज्याश्रित कवियों के सम्बन्ध में प्रायः कहा जाता है कि वे अपने आश्रयदाताओं को प्रसन्न और संतुष्ट करने के लिये बहुधा मर्यादा और सत्य का उल्लंघन कर जाते थे। उनके संकेत मात्र के आधार पर अपने विषय वस्तु को बदल सकते थे, औचित्य की उपेक्षा कर देते थे और अत्युक्ति का आश्रय लेकर चाटुकारिता की हद कर देते थे। किन्तु इतिहास और अनुश्रुति अनेक बार इसके विपरीत प्रमाण प्रस्तुत करती है। अनेक दरबारी कवि अपने आश्रयदाताओं के प्रशंसक थे किन्तु चापलूस नहीं थे। उन्होंने अनेक बार खोटे को खोटा ही कहा है। कविया करणीदान के संबंध में भी एक ऐसी ही आख्यायिक प्रचलित है। कहा जाता है कि एक बार मारवाड़ नरेश अभयसिंह और जयपुर नरेश जयसिंह पुष्कर तीर्थ में मिले। जब दोनों महाराजा पास पास बैठे थे तो महाराजा जयसिंह ने कहा– 'कवि राजा कुछ हम दोनों के संबंध में कहिये न'। करनीदान जी ने कुछ दोहे कहे, उनमें से एक यह भी था।

> जैपुर औ जोधांण पत, दोनूं थाप उथाप।
> कूरम मार्यौ डीकरौ, कमधज मारयो बाप॥

इसमें जयपुर के महाराज-कुँवर शिवसिंह व जोधपुर नरेश अजीतसिंह की राज्य के लोभ में की गई दोनों महाराजाओं के परिवारों की कलंक गाथा की भर्त्सना की गई है। हम कल्पना कर सकते हैं कि दोनों महाराजों को यह कटु और मर्मान्तिक सत्य कितनी कठिनाई से गले उतारना पड़ा होगा।

करणीदान का जन्म मेवाड़ के सूलवाड़ा गांव में हुआ था। कर्नल टॉड ने इनका जन्मस्थान कन्नौज माना है, जो भ्रामक है। इनकी जन्म तिथि के सम्बन्ध में निश्चित सूचना नहीं मिलती पर इनको संस्कृत, डिंगल और पिंगल की अच्छी शिक्षा मिली थी, यह इनकी रचनाओं को देखकर निश्चित तौर पर कहा जा सकता है। अपनी अर्द्धांगिनी के रूप में इन्हें विरजू बाई का साथ मिला जो स्वयं अच्छी कवयित्री थीं। इनका संबंध मेवाड के महाराणा सग्रामसिंह, शाहपुराधिपति उम्मेदसिंह, डूंगरपुर के रावल शिवसिंह और जोधपुर नरेश अभयसिंह आदि अनेक शासकों के साथ रहा है। सभी से इन्हें पर्याप्त पुरस्कार और सम्मान मिला और अन्त में जोधपुर महाराजा ने इन्हें लाख पसाव, कविराजा की पदवी और आलावास (आल्हावास) की जागीर देकर अयाचक बना दिया।

करणीदान की वीरता की प्रशंसा कर्नल टॉड ने बहुत अधिक की है। करणीदान ने स्वयं महाराजा अभयसिंह के साथ अहमदाबाद युद्ध में भाग लिया था। जिस स्फूर्ति, साहस और पराक्रम के साथ वे शत्रु-सेना को छिन्न भिन्न करते हुये बाहर निकल आये थे, वह अलौकिक व आश्चर्यमय जान पड़ता है। वे केवल तलवार के ही धनी नहीं थे, सरस्वती के भी वरद पुत्र थे। इस अशान्ति, युद्ध और विग्रह के युग में भी वे नियमित रूप से लिखते पढ़ते रहे। 'सूरज प्रकाश' कवि का एक बृहद् काव्यग्रन्थ है जिसका परिमाण ७५००० छंद है। महाराजा को सुनाने के लिये इन्होंने इसी विशालकाय ग्रंथ का संक्षिप्त रूप १२६ पद्धरि छंदों में किया, जिसका नाम 'बिड़द सिणगार' रखा गया। इसकी रचना से प्रसन्न होकर महाराजा ने इन्हें लाख पसाव, जागीर आदि ही नहीं दी किन्तु उन्होंने इन्हें हाथी पर सवार कराया, और वे स्वयं घोड़े पर चढ़ कर इनकी हाजरी में चले और कवि राजा को उनके निवासस्थान तक पहुंचाया। इस विषय पर यह दोहा प्रसिद्ध है—

अस चढियौ राजा अभौ, कवि चाढै गजराज।
पोहर हेक जलेब में, मौहर चलै महराज॥

'सूरज प्रकाश' डिंगल भाषा की एक उत्कृष्ट रचना मानी जाती है। कवि ने परम्परागत शैली को अपनाते हुये पहले पौराणिक पृष्ठ भूमि में राजवंश का इतिहास लिखा है और महाराजा जसवन्तसिंह के वर्णन तक आते ही सविस्तार लिखना शुरू कर दिया है। महाराणा जसवन्तसिंह, अजीतसिंह और अभयसिंह के जीवन की घटनाओं को इन्होंने खूब जम कर लिखा है। कवि ने यतियों के आडम्बर, भ्रष्टाचार और दुराचार को देखकर उनकी खूब खबर ली। इस ग्रन्थ का नाम 'जतीरासा' था। कहा जाता है कि पीछे से किसी विद्वान् शुद्धाचरण यती के कहने से उस ग्रन्थ को इन्होंने नष्ट कर दिया।

करणीदान के लिखे अनेक डिंगल गीत भी पाये जाते हैं। इन्होंने ब्रजभाषा में भी कविता की है। इनके रचित कुछ श्लोक संस्कृत में भी पाये गये हैं। इससे निष्कर्ष निकलता है कि कवि का इन भाषाओं से अच्छा परिचय था। जिस सफलता के साथ इन्होंने सजीव चित्र खींचे हैं; वे कवि के नैपुण्य और भाषाधिकार के द्योतक हैं। अलंकारों का सुन्दर प्रयोग स्थान स्थान पर किया गया है। राजवंश की उत्पत्ति को अनेक पौराणिक आधारों पर उठाया गया है। इनकी शैली में 'क्लेसिकल 'टच' सा जान पड़ता है।—इसका कारण संभवतया इनका पुराणादि धर्म ग्रन्थों, काव्य और व्याकरण-ग्रन्थों का नियमित अध्ययन ही होना चाहिये। छन्दोभंग बहुत कम है, लगता है कि कवि बहुत परिश्रमी और अध्यवसायी था।

कवि करणीदान तेजस्वी, पराक्रमी, वीर, साहसी और निपुण योद्धा,के साथ समय की गति को समझने वाला स्वामीभक्त, विश्वासपात्र उत्तरदायी और कुशल राजनीतिज्ञ था। तत्कालीन शासकों से विपुल सम्पत्ति और अपरिमित सम्मान पाकर उसने इस पुरानी कहावत को कि, लक्ष्मी और सरस्वती की आपस में बनती नहीं है' झुठला दिया। बड़ी विचित्र बात है कि करणीदान सरस्वती, लक्ष्मी और दुर्गा तीनों का कृपा पात्र था। ऐसा 'मणि-कांचन संयोग' अपवाद ही होते हैं।

करुणादान

अभयभूषण से

ऐ न घटा तन आन सजे भट,
ऐ न छटा चमके छहरारी।
गाजे न बाजत दुंदमी ऐ,
बक पन्त नहीं गज दन्त निहारी॥
ऐ न मयूर जु बोलत है,
विरदावत मंगन के गन भारी।
ऐ नहिं पावस काल अली,
अभमाल अजीवत की असवारी॥

—o—

सूरज प्रकाश से

रामावतार-जन्मोत्सव वर्णन

सिगार सोल सज्जयं, लखे सची सु लज्जीय।
इसी न रम्भ मंदरी, सभन्त ज्ञान सुन्दरी॥ १॥
सगीत नृत्य सोहती, मुनेस, ईस मोहवी।
अनङ्ग रङ्ग आतुरी, प्रिया नचन्त पातुरी॥ २॥
कुलीण नारि केकयं, आणंद में अनेकयं।
सुहाग माग सुम्मरी, अनेक राग उच्चरी॥ ३॥

इसीज वाणी उच्चरे, किलोल कोकिला करे।
प्रफूलयं प्रकाशयं, हँसन्त के हुलासयं ॥ ४ ॥
करन्त के किलोहलं, महा उछाह मंगलं।
समे इसी सहच्चरी, उरःवसी न अच्छरी ॥ ५ ॥
वणाव सोल चामरा, कटा छिवांण कामरा।
उच्छाह में उमङ्गयं, करंत राग रङ्गयं ॥ ६ ॥
रमै हसै नरिंजरां, मभार राज मिन्दरां।
करै उच्छाह सुकिया, पचास सात से प्रिया ॥ ७ ॥
छमा उच्छाह छक्कयं, अनेक दांन अप्पयं।
सकाज इष्ट सिद्धयं, नवै उदार निद्धयं ॥ ८ ॥
छत्रपति उच्छाह में, धनेस माल उधमें।
वेदो गतं विधानयं, दुजां अनेक दानयं ॥ ६ ॥
वसिष्ट आदि ब्रह्मयं, करन्त जात क्रमयं।
हलद कुंकु मंहरी, करन्त छोल केसरी ॥१०॥
दियै उछाह डम्बरं, धमंक घोर घुःघरं।
घरं घरं छमावणी, घरं घरं प्रमा घणी ॥११॥
उहन्त केली डालयं, उपन्त चन्द्रवालयं।
वजंत दुंदुभं वपं, जपन्त देव जै जपं ॥१२॥
किय्र वरवांण कीजियै, लहेन पार लीजियै।
इला सहाय अम्परै, त्रिलोक नाथ ओतरै ॥१३॥

दोहा

राम लखन सत्रघण भरत, सूरिज वंस सिंगार।
एक अंस चत्र वप अवधि, ए चत्रधर अवतार ॥

उन्छव वधे अजोधा, अद्भु दरसणि प्रमांणि।
चन्द्र देखी सामद चढ़े, जल राका निस जांणि॥

विड़द सिणगार से

छंद पद्धरी

श्री सरसत गणपत नमस्कार।
दीजिये मुज्ज वर बुध उदार॥
अवसांण सिद्ध रहमांण ईस।
वाखांण करू ऋप मांण वंस॥ १॥

जिण तेज अर्क जिमछक जहूर।
सुन्दर प्रवीण दातार सूर॥
छत्रपती अभी छत्र कुल छतीस।
बहत्तर कला लख्खण बतीस॥ २॥

वणश्राम ध्रम मरजाद वेद।
भाखा खट नवरस. अरथ भेद॥
आखरां समंद थागण अथाग।
रूपगां चत्र छतीस राग॥ ३॥

जोहरी परखे जिण विध जुहार।
दस चार परख विध्या उदार॥
वंस सकल पाये तोला-विलंद।
अघ-जीत सुनत नरलोक इंद॥ ४॥

सिस वेस पहल तपबल सजेब ।
झालियो साह अवरंगजेब।
पर चंड चंड कर होम पाठ ।
अवठाय दिया पतसाह आठ ॥ ५ ॥

साहरो जोध जोधां समन्द ।
कठहड़े चढ़ण मलफे कमन्द ।
किलमांण मीर हिक मत्र कीद ।
दईवांण पांण जम-डाढ़ दीद ॥ ६ ॥

अममाल क्रोध देखे अताल ।
महमंद-साह दिये मुक्रमाल ।
पत हुकम मदफरखांन पेल ।
भोकिया थाट भुज मारमेल ॥ ७ ॥

भाजिन्द बाजदल जलो-बोल ।
नीछंट खाग लुटी नार नोल ।
धड़कियो आगरे दिलि धाक ।
साहजां-पुर कीधो सांक-साक ॥ ८ ॥

साहां घर धोकल कर संग्राम ।
नृप धरियो धोकलसिंह नाम ।
बाईसी मोड़े माह थाह ।
आवियौ दिली पोरस अथाह ॥ ९ ॥

दूसरीवार पायो दिलेस ।
रोसन दौलापरधार रेस ।

चम चमे थाट सभनयण चोल ।
दरगाह शाह पडियो दरोल ॥१०॥

तद हुवो घाल जल मान त्रास ।
खूंदालम चालो अम्बखास ।
ओदक अमीर पछटियो एम ।
तूटते तार नगहार जेम ॥११॥

हासंग पेख महराज रंग ।
उड गयण वाज तुर्रा अलंग ।
मेजे सताव नजरां भुआल ।
रयदाल अतर जवहर रसाल ॥१२॥

गयणाग सीस छिवते गरूर ।
सम फते आवियाँ वियौ सूर ।
गवाँ बचाय थट मुगल गाय ।
मारे गिड हेकल दिली माय ॥१३॥

तेजाल जागिया कमंध तोर ।
आगिया दवे भूपाल ओर ।
अममाल तणा स्वभाव पेह ।
बंदगी वैर भूलेन वेह ॥१४॥

ज्यों कीध बंदगी हाथ जोड़ ।
वां दीध बगस दौलत अरोड़ ।
इंद्र सिंघ राव सूं वैर अंग ।
दल सजे जेण घेरे दुरंग ॥१५॥

घण सघण घाम चहु तरफ घेर ।
दुरगवी काढियो त्रास देर ।
लड़ एण तरह नागांण लीव ।
दड़ बांण दंध वन पटै दीध ॥१६॥

जोधार चढ़े बहु चले जाय ।
पोह तेज देखसो लगय पाय ।
नीसांण घोख कर अमल नोख ।
जोधाण करे अयांण जोख ॥१७

फुरमाण दिलीपत दीध फेर ।
आविया सत्रवां रण अजेर ।
सुरतांण बीर बगसीस काम ।
निज तेण खांन दोरां सनाम ॥१८॥

अमराव अमीरल चल अथाह ।
सांमहा मेलिया पात साह ।
जिण करे सलामां दास जेम ।
आदाब बजावे साह एम ॥१६

हालियो पटा-भर तणी हाल ।
मिल पातसाह चहु दीपमाल ।
कुसलात पूछ इम हेत कीध ।
देबो रसाल जवहार दीध ॥२०॥

अम माल साह मिल इण उजास ।
सूरज वे ऊगा, थंबखास ।

कुण घटै वधै दुहु तेज काय ।
विध साच वात कव दे वताय ॥२१॥

महमूद माह सूरज प्रमाण ।
जेठ गो अर्क अभमाल जांण ॥
उण वक्त खबर गुजरात आय ।
असपती अमल दीन्हों उठाय ॥२२॥

मरहठा करै सिर विलंद मेल ।
अहमदावाद मँडियो उखेल ।
सुण पातसाह फेरे सिताव ।
नरियंद सकल हाजिर नवाव ॥२३॥

महिपति अमीरतन हीण मांण ।
पांना दिस कोई धर न पांण ॥
तद तेज वांण नरसिंघ ताय ।
अभमाल पान लीन्हो उठाय ॥२४॥

खूंदालम जीतूं वीर खेत ।
सिर विलंद खान साहन समेत ।
कमधज्ज अर्ज इम सुणे कान ।
महमूदसाह लग आसमांन ॥२५॥

आसीस नेक कहि कहि अदाव ।
सिर पातसाह वगसे सिताव ।
लाखां दे तोपां जूंट लार ।
कुंजर अंस बगसे खग कटार ॥२६॥

जमराज हराकर फतह जूंभ ।
तखतरी लाज मरजाद तूझ ।
कही पातसाह इम विदा कीन ।
दुहु राह बांह मावास दीन ॥२७॥

तद हलैं विदा हुय मूँछ तांण ।
जल जेम ऊजले समंद जांण ।
खैंड़ेचे खड़िया थाट ग्रूर ।
सत्रवां काल विकराल सूर ॥२८॥

गाजियां नगारा गयण गाज ।
भूमी एवासी गया भाज ।
गैमरां हैंमरां थीय गोड़ ।
तखरां भंगरां दीह तोड़ ॥२९॥

लोहरां लंगरां झाट लाग ।
अवफरां गिरां तर झटै आग ।
मेवास तूटगा मगज मेट ।
फूटगा गिरंद हैंताल फेट ॥३०॥

तूटगा नदी सिर नीर त्रास ।
खूटगा हुवा चौगान खास ।
उड़ गया सहर घर छोड़ आथ ।
सिंघलां देवाडां तणां साथ ॥३१॥

चालीस कोस हैंजम चलाय ।
चालीस धरत चालीस जाय ।

रचकियो थूंहड़ां भड़ां राव।
देवड़ां भड़ां माथैं दबाव ॥३२॥

सीरोही ऊपरा खीवसार।
आबूधूजै गिर अढार।
अबुंदां तणा जम्मात ईश।
सरदा जिम आंणै घणा सीस ॥३३॥

तांखियो आज सरवूद ताय।
जांखियो आज अरबूद जाय।
कदमां लग निजर सलाम कीध।
इम डोल राव ऊमेद दीध ॥३४॥

जोधराज

※

'हम्मीर रासो' की कविता बड़ी ओजस्विनी है ।''''''प्राचीन वीरकाल के अन्तिम राजपूत वीर का चरित जिस रूप में और जिस प्रकार की भाषा में अंकित होना चाहिये था, उसी रूप और उसी प्रकार की भाषा में जोधराज अंकित करने में सफल हुये हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं।

—आचार्य रामचंद्र शुक्ल

जोधराज

जोधराज आदिगौड़ कुलोत्पन्न, अत्रिगोत्रीय ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम बालकृष्ण था। ये अलवर राज्य के नीमराणा ठिकानेके जागीरदार चन्द्रभानु के आश्रित थे और अपने आश्रयदाता की आज्ञानुसार इन्होंने 'हम्मीर रासो' का निर्माण किया। कवि अपनी वंश परम्परा के अनुरूप ही ज्योतिष व काव्य शास्त्र का अच्छा जानकार था। एक बार नीमराणा के ठाकुर चन्द्रभानु ने अपने दरबार में कहा कि मैंने 'हम्मीर रासो' का नाम मात्र सुना है, किन्तु उसे सुनने का अवसर नहीं मिला। अपने आश्रयदाता की इस अभिलाषा को पूरा करने के लिये जोधराज नें स्वयं 'हम्मीर रासो' की रचना की। इस कार्य के लिए उन्हें अपने आश्रयदाता से पर्याप्त धन-सम्पति और सम्मान मिला। कवि ने स्वयं आभार प्रकट करते हुये कहा है कि राजा ने उन्हें 'अयाची' बना दिया।

नृप करी कृपा तिहिं पर अपार।
धन धरा बाजि गृह बसन सार।
बाहन अनेक, सतकार भूरि।
सब भाँति अजाची कियौ मूरि।
(हम्मीर रासो पृ० ३)

जोधराज का एक मात्र आयतन प्राप्त ग्रंथ 'हम्मीर रासो' ही है जिसको संवत् १७८५ में कवि ने पूर्ण किया था इसमें कुल ९६९ पद हैं।

प्रारंभ में गणेश तथा सरस्वती की वन्दना की गई है। तदुपरान्त पृथ्वीराज के कुल में उत्पन्न चंद्रभान का वर्णन करते हुये कवि ने अपना परिचय दिया है। परम्परागत पद्धति का अनुकरण करते हुये कवि ने हम्मीर की वंशावली दी है। सृष्टि के आरंभ से लेकर हम्मीर तक दी गई यह वंशावली ऐतिहासिक उतनी नहीं है, जितनी साहित्यिक है। पौराणिक पद्धति पर ही सृष्टि के प्रारंभ का वर्णन है। इस वर्णन में कवि ने पौराणिक गाथाओं, लोक प्रचलित अनुश्रुतियों और पूर्ववर्ती साहित्यिक उल्लेखों का आधार लिया है। पद्मऋषि के मस्तक से अल्लाउद्दीन बादशाह, यज्ञायतन से राव हम्मीर, भुजाओं से महिमाशाह और गभरू, चरणों से वर्वर्णी अर्थात् अल्लाउद्दीन की बेगम रूपविचित्रा का अवतार हुआ, कवि की यह मान्यता ही उसे ऐतिहासिक काव्य-प्रणेता के स्थान पर केवल 'कवि' बना देती है। 'हम्मीर रासो' काव्य का चरित नायक 'राव हम्मीर' अनेक अनुश्रुतियों और लोक कथाओं का जन्म दाता रहा है। 'तिरिया तेल हम्मीर हठ, चढ़ै न दूजी बार' की कहावत का आलम्बन राव हम्मीर बड़ा वीर, निर्भीक और साहसी पुरुष था। उसको लेकर अनेक किंवदन्तियों का प्रचलन हो गया है। ऐसे लोकप्रिय चरित्र को लेकर कवि ने अपने नैपुण्य का भली भाँति निर्वाह किया है। महत् चरितों को लेकर कविता लिखना बड़ी टेढ़ी खीर है। यदि कवि में विषयानुकूल भाव प्रवणता, भाषा पर पर्याप्त अधिकार और काव्य के अनुरूप अन्तर्दृष्टि है, तो उसका नायक स्वयं उसकी सफलता में योग देता है, किन्तु यदि उसमें उपयुक्त सहृदयता और गुणों की कमी है तो उसकी असफलता को और भी अधिक भयंकर बना देता है। हमारा कवि इस तथ्य को भली भाँति समझता था, यही कारण है कि उसने इतिहास की मांग की परवाह नहीं की किन्तु लोक रुचि और काव्य की आवश्यकताओं को समझा और उनका पालन किया। यही कारण है कि उसके इस ग्रन्थ में स्थान स्थान पर सबल और रस सिद्ध पंक्तियाँ दीख पड़ती हैं। यथा—

जोधराज

हम्मीर रासो

पद्मऋषि पराजय

छप्पय

रखतभँवर ऋषिपद्म उग्रतप तेज कराए ।
इन्द्रासन डिगमगिय देवपति संका खाए ॥
तब कामादिक बोलि सक्र ऋषि पास पठाए ।
करो विघ्न तब जाय भग पर काज नसाए ॥
तब चल्यब मार निज सेन जुत ऋतु बसंत प्रगटिय तुरत ।
बह त्रिविध पवन अद्भुत महा करहिं गान रंभा सुरति ॥१॥

बसंत ऋतु वर्णन

छन्द पद्धरी

तिहिं समय काम प्रेर्यौ सुरिंद्र ।
जुहारि इन्द्र उठि पाव बंदि ॥
सब परिकर बोले चढ़ि सुमार ।
ऋतु छहूँ संग धनु सुमन हार ॥ २ ॥
रति परम प्रिया ऋतुराज जानि ।
नित रहत निरंतर रूप मानि ॥

यहु किन्नर गावत देवनारि।
गंधर्व संग अति बल उदार ॥ ३ ॥

संगीत माव गावैं अनंत।
सुर नर सुनंत वसि होत मंत ॥
वन उपवन फुल्लहि अति कठोर।
रहे झौर मौर रस अंधमौर ॥ ४ ॥

कल कूजत कोकिल ऋतु वसंत।
मुनि मोहत जहँ तहँ सकल जंत ॥
नर नारि भए कामंध अंध।
तजि लाज काज परि काम-फंद ॥ ५ ॥

पहुँचे सुमारि ऋषि निकट आय।
अरयौ सुपरम भट अग्ग जाय ॥
ऋषि लखे सुभट सेना सुकाम।
ऋषि कह्यौ कहा करि है सुवाम ॥ ६ ॥

करि कठिन आप लाई समाधि।
तिहि रहत काम क्रोधारि व्याधि ॥

ग्रीष्म ऋतु वर्णन

ऋतु ग्रपम कौ आज्ञा सु दिन्न।
तिहि अति प्रताप जाज्वल्लि किन्न ॥ ७ ॥

रवि तपै विपम अति किरन धूप।
रषि नैंन खुल्लि दिक्खिय अनूप ॥

वट इक्का महा गह्वर सुजानि।
तिहिं निकट सरोवर सुरस मानि ॥ ८ ॥

इक आस्रम सुन्दर अति अनूप।
तिय गान करत सुन्दर सरूप ॥
सौरभ अपार मिलि मंद पौन।
मृगमद कपूर मिलि करत गौन ॥ ९ ॥

स्रीखंड मेद केसर उसीर।
तिहिं परसि ताप मिट्टत सरीर ॥
गंधर्व औंर किन्नर सुबाल।
मिलि अंग रंग पहरें सुमाल ॥१०॥

चित चल्यौ नाहिं अपि पजमाँन।
रहि ग्रीष्म ऋतु हिय हारि माँन ॥११॥

दोहरा छंद

लग्यौ न ग्रीषम कौ कछू, अपि प्रताप तपधीर।
तब पावस परनाँम करि, आयस काँम गहीर ॥१२॥

वर्षा ऋतु वर्णन

छंद भुजंग प्रयात

उठे बद्दलं घोर आकास भारी।
भई एकं घारं अपारं अँध्यारी ॥
बहँ पौन चार्‍यों महा सीतकारी।
चहूँ ओर क्रोधंत दामनि अँध्यारी ॥१३॥

घने घोर गज्जंत बर्षंत पानी ।
कलापी पपीहा रटैं भूरि बानी ॥
तहाँ बाल झूलंत गावत झोनी ।
रही जाय आसम भई काँममीनी ॥१४॥

उड़ैं चीर सम्मीर लग्गंत अगं ।
लसे गात देखंत जग्गै अनंगं ॥
करैं सोर झिल्ली घने दद्दुरगे ।
तहाँ बाल लीला करैं काँम संगे ॥१५॥

निकट्ट उघट्टत सगीत बाला ।
वर अंग अंगं रची फूलमाला ॥
कटाछं करैं मद हासं प्रसारैं ।
तहाँ पन्न अंगं लगैं ना निहारैं ॥१६॥

दोहरा छंद

पावस हारि बिचारि जिय, ऋषि न तज्यौ तप आप ।
तब सु मैन मन मैं कहिय, उपजे सरद सुताप ॥१७॥

शरद ऋतु वर्णन

छंद त्रोटक

तजिये तप पावस त्रित्ति सबं ।
ऋतु सारद बादर दीस अबं ॥
सरिता सर निम्मल नीर बहैं ।
रस रंग सरोज सु फुल्लि रहैं ॥१८॥

बहु खंजन रंजन भृङ्ग भ्रमं।
कलहंस कलानिधि बेदि भ्रमं॥
वसुधा सब उज्ज्वल रूप कियं।
सित बासन जानि बिछाय दियं॥१६॥

बहु भाँति चमेलिय फूलि रही।
लखि मार सुमार सुदेह दही॥
बन रास बिलास सुवास भरै।
तिय काँम कमाँन सुतानि धरै॥२०॥

समणों पर तें नर काँम जगै।
विरही सुनि कै उर घ्याव खगै॥
घर अंबर दीपग जोति जगी।
नर नारि लखैं उर प्रीति पगी॥२१॥

श्रपि पास त्रिया सर न्हान रच्यौ।
जल केलि अनेक प्रकार मच्यौ॥
बिन चीर अधीर लखैं नर यै।
कुच पीन नितंब सुकाँम तबै॥२२॥

कबरी छुटि नागनि सी दरसै
सुर संग भ्रमै रस सो सरसै॥
श्रपिराज महा उर धीर श्रयं।
रितु सारद हारि सुजात रयं॥२३॥

दोहरा छंद

हारि मानि सारद गइय, उठि हेमंत सकोपि।
महासीत प्रगटिय जगत, सबै लाज तजि लोपि ॥२४॥

हेमंत ऋतु वर्णन

छप्पय छंद

तब सुहेम करि कोप सीतं अति जगत प्रकास्यौ।
विषम तुषार अपार मार उपचार सुमास्यौ ॥
कपत चैतन रूप कह्म जर जरत समूरे।
तिय हिय लगि लगि वचन चरत सुख सैन सरूरे ॥
निहिं समय जीव सब जगत के भए इक्क नर नारि सब।
उरवसी आय ऋषि निकट तक हिये लाय मोहिं सरन अब ॥२५॥

दोहरा छंद

खुली न कठिन समाधि ऋषि, चली हिमंत सुहारि।
सिसिर परस मन बरनि करि, उठी सुकाँम जुहारि ॥२६॥

शिशिर ऋतु वर्णन

छंद मोतीदाम

कियौ तब मार हुकम्म सु हेरि।
उठी सिसिरौ तब आयसु फेरि ॥
किये नव पल्लव जे तरु वृंद।
प्रफुल्लित अंब कदंब स्वछंद ॥२७॥

वहैं बहु भांति त्रिविद्दि समीर।
रहै नहिं धीरज होत अधीर॥
लता तरू मंडन संकुल भूरि।
भए त्रण गुल्म हरे जड़ मूरि॥२८॥

मिटै जग सीत न ताप न तोप।
सबै सुखदायक जीवन सोय॥
झुके फल फूल लता वर भार।
भ्रमैं बहु भृंग जगावत मार॥२९॥

लगी लखि मायु सबै तिहिं मार।
सुने डफ लाज तजै नर नार॥
बजावत गावत नाचत संग।
अबीर गुलालरू केसरि रंग॥३०॥

भए मतवार सु खेलत फाग।
महा सुख संग सँजोग्गनि भाग॥
त्रियोग्गनि जारत मारत मार।
अनेक सुगंध अनेक विहार॥३१॥

वसंत ऋतु वर्णन

छंद लघु नाराच

असंत संत मोहियं, बसंत खोलि जोहियं।
बजंत बीन बाँसरी, मृदंग संग झाँझुरी॥३२॥

लियं सुबाल वृंदयं, जगत्त काँम द्वंदयं ।
अनेक रूप सुंदरी, मनोज्ञ राव की छरी ॥३३॥
स्वेस केस पासयं, मनो कि मैंन फाँसयं ।
गुही त्रिविद्धि वेनियं, कि मोह किन्न सैनयं ॥३४॥
महा सुपट्ट पट्टिय, सूंगार भूमि फट्टियं ।
विचै सुमेद रेखयं, महा विसुद्ध देखयं ॥३५॥
विसाल भाल सोभियं, छपा सु नाथ लोभियं ।
सु मध्य सीस फूलयं, दिनेस तेज तूलयं ॥३६॥
भरी सु मुक्क मंगयं, मनो नछत्र मगयं ।
विसाल लाल विंदयं, मिले सु भोम चंदयं ॥३७॥
अराव आड आइयं, मनो मिलन्न आइय ।
दिनेस भोम बुद्धय, ससि गृह सु मुद्दयं ॥३८॥
कपोल गोल आदसं, कि भौंह भौंर सादसं ।
प्रफुल्ल कंज लोचनं, मृगाखिन्न गर्व मोचनं ॥३९॥
त्रिविद्ध रंग भातयं, सु स्याँम स्वेत रातयं ।
बनी कि कीर नासिका, सु गव्व नव्व भासिका ॥४०॥
मनो सु काँम ओपयं, दर्यो सुचक्क कोपयं ।
करन्न फूल राजय, उभै कि माँन साजयं ॥४१॥
सुदंन स्याँम झल्लकं, अमेच भौंर बल्लकं ।
अरुन्न रेख बेसय, पियूप कोस देखयं ॥४२॥
अनार दंत कुंदयं, लसंत पज्ज दंतय ।
बुलंत वाणि कोकिला, विपंचकी सुरं मिला ॥४३॥
करोति पोति कंठयं, सुहार हार कंठयं ।

छप्पय छंद

कुछ कंचन घट प्रगट, नाभि सरवर वर सोहै।
त्रिवली पावह ललित, रोम राजी मन मोहै॥
पंचानन मधि देस, रहत सोभा हियहारी।
मनहुँ काँम के चक्र, उलटि-दुंदुमि दोउ डारी॥
दोउ जंघ रंम कंचन दिपत, धरी कमल हाटक नर्ने।
गति हंस लखत मोहत जगत, सुर नर मुनि धीरज हनैं॥४४॥

जिती उब्बसी मंग, सकल सम्मूह मिलिय वर।
विचि सु रैंन सह सैंन गए, ऋषि निकट महूकर॥
गावत विविध प्रकार, करत लीला मन भाइय।
हाव भाव परमाव, करत आस्रम में आइय॥
ऋषि निकट आय होरिय रची, वर्षत रग अनंग गति।
नन चलै चित्त ज्यों ज्यों अचल, करत कृपा त्यों २ अमित॥४५॥

दोहरा छंद

करि विचार त्रिय कृत कृपा, कुसुम कुंद गहि लीन।
लीला ललित सु विथ्थरिय, चंचल वयसु नवीन॥४६॥
समि सुख वृंद स्वछंद मिलि, रति सम रूप अनूप।
ऋषि समीप क्रीड़ा करत, हरत धीर मुनि भूप॥४७॥

चौपाई छंद

वर्षंत रग अनंग सु वाला।
मनहुँ अनेक कमल की माला॥

चंचल नैन चलैं चहुँ आसा।
रूप सिंधु मनु मीन सु पासा ॥४८॥
घूँघट ओट दुरत प्रगटत यों।
मनो ससि घटा दवत उघटत ज्यों ॥
विलुलित बसन अंग दुति सोहै।
निरखत सुर नर मुनि मन मोहै ॥४६॥
अलक सलक अतिसै चटकारी।
अमी पियत ससि नागनि कारी ॥
छुटै गुलाल मुठी मृदु मुसकै।
चूवै अधर बिंब रस चमकै ॥५०॥
करै गान पसु पच्छी मोहैं।
कहो जगत इन पटतर को है ॥
लै लै गेंद परसपर मेलैं।
बाल वृन्द मिलि मिलि सुख फेलैं ॥५१॥
अध ऊरध चहुँ ओर घुमावैं।
लजति खिजति लगि प्रेम प्रहारैं ॥
मंद पवन लगि चीर परयो धर।
कुच अंकुर उर मनहुँ उमै हर ॥५२॥
दमकति दिपति सलोनी दीपति।
काम लता विहरैं मनु गज गति ॥
लगत गेंद कंपित उर भागी।
मंद मुसुकि अपि निकट सुपागी ॥५३॥

सुमन वृन्द सौरम उठि भारी।
भ्रमर पुनीत गुँजार उचारी॥
सब्द उन्मद संधाँन सु किनौ।
अति रिसि लानि सवन उर दिनौ॥५४॥

छुटि समाधि ऋषि नैन उघारे।
अति सकोपि मम्मर उर मारे॥
चहुँ दिसि चितै चकित ऋषि भयऊ।
लखि तिय वृन्द अनंद सु भयऊ॥५५॥

वांकीदास

*

आज से लगभग १५० वर्ष पूर्व मारवाड़ में एक ऐसे व्यक्ति का जन्म हुआ था जो सच्चा कवि, इतिहास का मर्मज्ञ और साहित्य में विद्वान् था। वह था महाराजा मानसिंह का काव्यगुरु कविराजा बांकीदास।

—गौरीशंकर हीराचंद ओझा

बाँकी दास

जोधपुर नरेश महाराजा मानसिंह का शासन काल अनेक विशेषताओं के लिये प्रसिद्ध है इस सम्बन्ध में निम्न दोहा कहा जाता है।

जोध बसाई जोधपुर,
ब्रज कीनी विजपाल।
लखनेऊ काशी दिल्ली,
मान करी नैपाल॥

अर्थात् राव जोधाजी ने जोधपुर नगर बसाया और महाराजा विजयसिंह ने यहाँ पर वैष्णव सम्प्रदाय के मन्दिर बना कर इसे ब्रज भूमि बनादी, परन्तु महाराजा मान ने तो गवैयों, पण्डितों और योगियों को बुला कर उसे काशी, लखनऊ, दिल्ली और नैपाल ही कर दिया। इन्हीं महाराजा मानसिंह के 'भाषागुरु' डिंगल के प्रतिभाशील कवि बांकी दास थे।

बांकीदास का जन्म चारण जाति के आसिया कुल में, विक्रम संवत् १८८८ में, जोधपुर राज्य के पचभद्रा परगने के भांडियावास नामक गांव में हुआ। अपने पिता से कवि का सामान्य ज्ञान प्राप्त कर संवत् १८५४ के लगभग वह जोधपुर गये। वहां निरन्तर पांच वर्ष भिन्न भिन्न गुरुओं के पास उन्होंने भाषा में यथा संस्कृत, फारसी, *अपभ्रंश डिंगल पिंगल आदि व्याकरण, काव्य, शास्त्र, इतिहास, दर्शन* आदि का ज्ञान प्राप्त किया। बांकीदास एक बहु पठित व्यक्ति थे और विभिन्न भाषाओं की साहित्यिक परम्पराओं से भली प्रकार

समझते थे। उन्होंने पुराणों विभिन्न शास्त्रों और अलग अलग देशों के इतिहास का गहरा अध्ययन किया था। उन्होंने स्वयं कहा है 'बंक इतेयक गुरू किये, जितयक सिर पर केश। अनेक गुरुओं से अध्ययन करने के उपरांत वे अपने महान् व्यक्तित्व और ऊँची योग्यता के कारण तत्कालीन जोधपुर नरेश महाराजा मानसिंह के कृपा पात्र बन गये। उनकी कवित्वशक्ति और विद्वता से प्रभावित होकर मानसिंह ने बांकीदास को अपना काव्य गुरू बनाया तथा कविराजा की उपाधि, ताजीम, पांव में सोना, लाख पसाव दे कर इनकी प्रतिष्ठा बढ़ाई। इनके आश्रयदाता ने इन्हें कागजों पर लगाने की मोहर रखने का मान भी दे रखा था, जिस पर यह बरवै अंकित था—

श्रीमान मान धरणीपति, बहु गुण रास।
जिन भाषा गुरु कीनौ, बांकीदास॥

बाँकीदास अपूर्व प्रतिभा सम्पन्न कवि थे, काव्य और छन्द शास्त्र के अधिकारी विद्वान थे और षट्भाषा प्रवीण थे। वे आशु कवि थे। कहा जाता है कि उनकी धारणा शक्ति बड़ी प्रबल थी और स्मरणशक्ति भी प्रखर थी। इसी ईश्वर-प्रदत्त विशेषता के बल पर उन्होंने इतिहास का विशेष ज्ञान प्राप्त किया था। एक बार ईरान का कोई सरदार भारतवर्ष की सैर करता हुआ, जोधपुर पहुँचा। महाराजा से मिलने पर उसने किसी इतिहासवेत्ता से मिलने की अभिलाषा प्रकट की। महाराजा की इच्छानुसार बांकीदास उस सरदार से मिले और अपनी इतिहास सम्बन्धी विद्वता से उसे खूब प्रभावित किया। उसने उनके ऐतिहासिक ज्ञान की प्रशंसा लिखकर महाराजा के पास भेजी, जिसे महाराज ने बड़ा गौरव समझा।

बाँकीदास बड़े तेजस्वी और स्वाभिमानी व्यक्ति थे। इनके स्वाभिमान संबंधी आख्यान अन्यत्र दिया गया है। वे बड़े निर्भीक, प्रत्युत्पन्नमति और मौलिक विचार वेत्ता थे। उनके मन्थ इस बात के

साखी हैं। इन्होंने २७ ग्रन्थों की रचना की है यथा (१) वैसकवार्ता में वैश्याओं के जाल से बचने की सावधानी दी गई। (२) विदुर बत्तीसी में कवि ने राज परिवारों में जीहजूरियों के स्वभाव, चरित्र, व्यवहार आदि का हास्यमय चित्र आंका है। (३) कृपण दर्पण (४) कृपण पच्चीसी (५) कुकवि बत्तीसी क्रमशः कंजूसों व कुकवियों पर व्यंग है। (६) वैसवार्ता (७) कायर बावनी (८) चुगल मुख चपेटिका में वैश्यों (बनियों) कायरों और चुगलखोरों की भर्त्सना की गई है। (९) मावड़िया-मिजाज में, अन्तःपुरों में पले हुये नाजुक मिजाजी का पुरुषों पर व्यंग बाण बरसाये गये हैं। (१०) भुरजाल भूषण चितौड़गढ़ की प्रशंसा में लिखित काव्य ग्रन्थ है। (११) जेहल-जस-जड़ाव और (१२) सिध राव छतीसी में क्रमशः कच्छभुज नरेश जेहल और अनहिल-वाड़ नरेश सिद्धराज जैसिंह की दानवीरता का वर्णन किया है। (१३) वीर विनोद (१४) सुपह छत्तीसी (१५) सुजस छत्तीसी (१६) दातार बावनी (१७) सूर छत्तीसी आदि में वीरों और दाताओं की प्रशंसा है। (१८) सिंह छत्तीसी (१९) धवल पचीसी में, सिंहरूपी वीरों और धवल वृषभ रूपी यश का चित्रण बड़ी ही मार्मिक शैली में किया गया है। (२०) राधिका नखशिख वर्णन झमाल छंद में लिखित शृंगार ग्रन्थ है (२१) ऊमराट-छत्तीसी में ऊमरकोट स्थान का वर्णन है। (२२) मोह मर्दन (२३) नीति मंजरी (२४) संतोष बावनी (२५) गंगा लहरी (२६) स्फुट संग्रह (२७) वचन विवेक पच्चीसी आदि नाम ही विषय के परिचायक हैं।

बांकीदासने केवल कविता तक ही अपने को सीमित रखा हो, ऐसी बात नहीं है। स्व० गौरीशंकर ओझा के संग्रह में बांकीदासजी लिखित २८०० ऐतिहासिक वार्तायें (ख्यातें) पकड़ थीं जो अब तक अप्रकाशित हैं। ओझाजी जैसे इतिहासज्ञ की राय में 'यह संग्रह' केवल राजपूताने के इतिहास के लिये ही उपयोगी हो, ऐसी बात नहीं किन्तु

राजपूताने के बाहर के राज्यों तथा मुसलमानों के इतिहास की भी इसमें कई बातें उल्लिखित हैं।[1] कुछ राजस्थानी कहानियों (बातों) की भी उन्होंने रचना की। इस प्रकार हम देखते हैं कि क्या गद्य और क्या पद्य, दोनों में बांकीदास की अप्रतिभ पहुँच थी। वे समान अधिकार के साथ दोनों में सफल रचना करते थे। महाभारत के कुछ अंश का भी उन्होंने अनुवाद किया था। वे सर्वतोमुखी प्रतिभा के स्वामी थे।

संवत १८६० में ये स्वर्गवासी हुये। समाचार जानकर महाराजा मानसिंह बहुत दुःखी हुये और उन्होंने शोकोद्‌गार इस प्रकार प्रकट किये।

सद्‌ विद्या बहुसाज,
बांकी थी बांका बसु।
कर सूधी कवराज,
आज कठीगो आसिया॥
विद्याकुल विख्यात,
राजकाज हर रहसरी।
बांका तो विण बात,
किण आगल मनरी कहां॥

[हे बांकीदास! तेरी सुविधारूपी सामग्री के कारण पृथ्वी पर बहुत बांकापन (निरालापन) था। हे आसिया! हे कविराज! आज उसे सीधी करके तू कहां चला गया? विद्या और कुल में विख्यात, हे बांकीदास! तेरे बिना राजकाज की प्रत्येक बात और रहस्य किसके आगे जाकर कहें?]

इतना अधिक महत्वपूर्ण होने पर भी बांकीदास अपने आश्रय दाता के 'जी हजूरी' नहीं थे। उनको यह महत्व और सम्मान अपनी प्रतिभा के बल पर मिला था, चाटुकारिता के बल पर नहीं। जब मारवाड़

---

१ गौरीशंकर हीराचन्द ओझा 'चारण' वर्ष १, पृष्ठ २५,

में साथों का उपद्रव बहुत बढ़ा तो निर्भीक कवि उनकी बुराई किये बिना न रह सका। अपनी मातृभूमि छोड़कर मेवाड़ जाना उसने गवारा कर लिया। राजकोप की परवाह भी नहीं की किन्तु सच्चाई से कभी मुख नहीं मोड़ा। यह बात अलग है कि मारवाड़ नरेश ने पुनः बुला लिया।

विषय, भाव, भाषा, और शैली सभी दृष्टियों से बाँकीदास डिंगल भाषा के प्रथम श्रेणी के जगमगाते हुये रत्नों में से एक हैं।

बाँकी दास

सूर-छतीसी

दोहा

सूर न पूछै टीपणौ, सुकन न देखै सूर ।
मरणाँ नूँ मंगल गिणै, समर चढ़ै मुख नूर ॥ १ ॥
केहर रै हाथल करी, कीधी दात वराह ।
सूर काज कीधी सुजड़, विध करतापण वाह ॥ २ ॥
सूरा रण साँकै नहीं, हुवै न कातल हेम ।
टूट करै तन आपणौ, काच कटोराँ जेम ॥ ३ ॥
ऊडै लोहां सूर मल, सूर न जाय सरक्क ।
चढ़ै गजां दांतूमलां, रण रीझवै अरक्क ॥ ४ ॥
जाया रजपूतांणियां, धीरत दीधी देह ।
प्रांण दियै पांणी पुणग, जावा न दिये जेह ॥ ५ ॥
भड़ा जिकांहूँ भामणौ, कहा करू वखांण ।
पड़ियै सिर धड़ नह पड़ै, कर वाहै केवांण ॥ ६ ॥
सूर भरोसै आपरै, आप भरोसै सीह ।
सिह दहूँ ऐ भाजै नहीं, नहीं मरण री वीह ॥ ७ ॥
सरवी अमीणाँ साहिबाँ, चोहजूभौ बल वंड ।
सो थांभै भुज डंड सूं, खड़हड़तो ब्रहमंड ॥ ८ ॥

सखी अमीणा कंथरी, पूरी एह प्रतीत।
कै जासी सुर भ्रंगड़ै, कै आसी रणजीत ॥ ६ ॥

सीह-छतीसी

केहर मत गालक कहो, दखो जात सुभाव।
वासै देखैं वाहरां, परत न छंडै पाव ॥ १ ॥
अंबर री अवाज सूं, केहर खीज करंत।
हाक धरा ऊपर हुई, केम सहै बलवंत ॥ २ ॥
नव हत्थो मत्थो बड़ो, रोस भटक्कै रार।
ओ कुंम्भाथल ऊपरा, हाथल वाहण हार ॥ ३ ॥
सादूलो वन संचरै, करण गयंदां नास।
प्रबल सोच भमरां पड़ै, हंसां हुवै हुलास ॥ ४ ॥
सूतौ थाहर नींद सुख, सादूलौ बलवंत।
वन कांठै मारग वहै, पग पग हौल पड़ंत ॥ ५ ॥
मुँह न दियै परमारियै, भागा न करै घाव।
सादूलो साचा गुणां, वेह किया वन-राव ॥ ६ ॥
उद्दम री आसा करै, सहै नहीं पणराव।
घात करै गैंवर घड़ा, सीहाँ जात सुभाव ॥ ७ ॥
सीहाँ विपत न समवै, टाली आप न टाल।
हाथल सूँ पल हेक मैं, सीहाँ हुवै सुगाल ॥ ८ ॥
चक्र पंकत रद नीर मद, गरजण गाजपिछाँण।
पटकै हाथल पंचमुख, जलहर मैंगल जाँण ॥ ९ ॥

केहर कुंभ विदारियौ, गजमोती खिरियाह ।
जाँणे काला जलद सूँ, ओला ओसरियाह ॥१०॥

धवल-पचीसी

राघव रयणायर रसा, सेस महेश्वर वैण ।
सुणे वधायौ गिरि-सुता, सो ह्रौ मोसुख दैण ॥ १ ॥
तूं क्यूं गणपत नामलै, जीतै धवलो ज्यार ।
गणपत हुंदा बाप रौ, धवल उठावै भार ॥ २ ॥
धवल न अटकै धुर वहै, कादूं पांणी कीच ।
इण री जननी तारही, वैतरणी रै वीच ॥ ३ ॥
कांकर करहौ, गारगज, थल हैंवर थाकंत ।
त्रहूं ठौड़ हेकण तरह, चंगौ धवल चलंत ॥ ४ ॥
जो धणदीहौ सागड़ी, ह्वै विरदावण हार ।
सींगालौ वल सौ गुणौ, जाणावै जिणवार ॥ ५ ॥
धवला सूं राजैधणी, चंगी दीसै ग्वाड़ ।
नारायण मत नांखजे, धवला ऊपर धाड़ ॥ ६ ॥
धवल रूप धरियौ धरम, शिव धवलै असवार ।
कामधेन खरणै धवल, क्यूं नह भालै भार ॥ ७ ॥

नीति-मंजरी

हिये मरै खल हात, खगधारां कुलखोवणा ।
सूं पै हेकण साथ, सिर वितधर वसुधा सुजस ॥ १ ॥
काज अहोणोही करै, एह प्रकृत खल अंग ।
रांमण पठियो राम दिस, कर सोवनो कुरंग ॥ २ ॥

वैरी रौ वेसास, कीधौ मन छोडे कपट ।
वसिया नैड़ा वास, अवस हुवा वे-सास वे ॥ ३ ॥
वैरी कंटक नाग विष, पीळ्ळ कैंवच दाघ ।
याम्रं दूर रहंतड़ां, दूर रहे दुख दाघ ॥ ४ ॥
वैरी मही तोटो वसै, वसै नफो नह वंक ।
सिया विरह राघव सद्यौ, रावण पलटी लंक ॥ ५ ॥
वारवधू ही हरण वित, नेह जणावै नैंण ।
यूं सिर लेवा ऊचरै, वैरी मीठा वैंण ॥ ६ ॥
वैरी रा मीठा वचन, फल मीठा किंपाक ।
वे खाधां वे मानियां, हुवा कृतांत खुराक ॥ ७ ॥
रीझै सांमल राग, मीजै रस नह मैंचकै ।
नैड़ो आवै नाग, पकड़ी जै छावड़ पड़ै ॥ ८ ॥
वैरी घर मैं पवनयूं, वचै दीप दुतिवंत ।
दीप हूंत दरसंत, घर मैं उजवालौ घणौ ॥ ६ ॥
श्रै बक मूनी ऊजला, मीठा मोला मोर ।
पूछौ सफरी पनगनूं, क्रतऊघड़ै कठोर ॥१०॥

सुपह-छत्तीसी

रचियौ जिण जिग राजसू, मेछां कर बल मंद ।
पत कनौज दल पांगलौ, जग जाहर जैचंद ॥ १ ॥
भिड़ियौ मालौ अउव मत, रौदां सगत रही न ।
खिलतैरै तूंगा किया, अजहां तेरै तीन ॥ २ ॥

पावन हुवौ न पीठवौ, न्हाय त्रिवेणी नीर।
हेकर्जेत मिलियां हुवौ, सौनिकलंक सरीर॥३॥
गींदोली गुजरात सूं, असपनरी घी आंण।
राणी रग निवास में, तै जग मात जुआंण॥ ४॥
परवत पई पछाड़िया, मेरो चाचग देव।
कुंभकरण रांणो कियो, अइयो रयण अजेव॥ ५॥
गयौ अंहल गहलोतवे, कुंभ करण रौ क्रोध।
धजबड़ बले मेवाड़ धर, जीतौ तूं यह जोध॥ ६॥
मांण दुजोयण मालदे, जिण बांधौ जग हत्थ।
मारथ भिड़िया जास भड़, साह हूंत समरत्थ॥ ७॥
पिड़ भू भीम पछाड़ियौ, खुरम गयौ कर खेह।
गांजण गजण अगंजियां, वीर वणायौ वेह॥ ८॥
जिनै जसौ पह जीवियो, थिर रहिया सुर थांण।
आंगल ही अवरंग सूं, पड़ियौ नेह पाषांण॥ ६॥
हथियां तैं जमदाढ हय, रांद सलावत रेस।
साहजहां रौ सौकियौ, आंबखास अमरेस॥१०॥
कोड़ दीध कमधज कमैं, सवा कोड़ पह सींग।
चीकांणी दांता बड़ा, उभै हुआ अरड़ींग॥११॥
ईडरियां आचार री, चीर चढै तौ वेल।
हसत चढै चारण हुवै, माया सरसत मेल॥१२॥
मांगड़ खारा खून कर, तूं आण न डर तार।
थौ ऊभौ अड़सीह री, हाथू बगसणहार॥१३॥

मावड़िया मिजाज

मावड़िया अंग मोलियां, नाजुक अंग निराट ।
गुपत रहे ऊमर गमै, खाय न निजबल खाट ॥ १ ॥
नैणा रा सोगन करै, मैं माने सुण भूत ।
रामत डूलांरी रमै, रांडोली रा पूत ॥ २ ॥
प्रगटे वांम प्रवीण रो, नर निदाढियो नाम ।
नर मावड़ियां नाम त्यूं, विना पयोधर वाम ॥ ३ ॥
कर मुख दे लचकाय कर, झमक पलैसुर झीण ।
मावड़ियो महिला तणी, मारे रोज मलीण ॥ ४ ॥
होस उड़ै फाटै हियो, पडै तमाला आय ।
देखे जुध तसवीर द्रग, मावड़िया मुरझाय ॥ ५ ॥

कृपण दर्पण

कृपण सतोष करै नहीं, लालच आडे अंक ।
सुपण समीपण सू मिलै, लिए अजारे लंग ॥ १ ॥
कृपण संतोष करै नहीं, सौमण जाणो सेर ।
कर टांकी ले काटहीं, सुपना मांहि सुमेर ॥ २ ॥
कृपण हुवै मर कुंडली, संपत बांटे नांहि ।
कहियो चोडै कुंडली, मरता भारथ मांहि ॥ ३ ॥
करतब नह राजी कृपण, राजी रूपैयांह ।
कड़वो दास कुटंबियां, प्रामणड़ां पइयाँह ॥ ४ ॥
चारण भट्टां बांभणां, चपण सुणावे सूब ।
धे राजी सनमान सू, दीधे राचै डूंब ॥ ५ ॥

मोह मर्दन

तन दुख नीर तड़ाग, रोग विहंगम रूखड़ो ।
विसन सली मुख पाग, जरा अरक ऊवर जवल ॥ १ ॥
चरणां आठां चालियो, जंगलरी रुख जाय ।
पुरुष हूत दूंणू पसू, अतक कीधो आय ॥ २ ॥
नह बहमन नोसेरवां, अफरास्याब न ऐथ ।
फरेदून नमरूद फिर, कयूमर्स गो कैथ ॥ ३ ॥
सहरयार मीनोचहर, कैकाऊस जुहाक ।
सुलेमान जमसेदनू, फेंस गयो जंम फाक ॥ ४ ॥
जम हथ्था फुरती जिका, बरणो कवण बणांय ।
पोंहचे मारण प्राणिया, जल थल अंबर जाय ॥ ५ ॥

राधिका सिख-नख-वर्णन

सखि-बदनी तो सिर सरल, मेचक केस मजाँण ।
हिए काँम पावक हुवै, जास धुँवाँ मन जाँण ॥
जासधुँवाँ मन जाँण, नसाँ मग नीसरे ।
मच्छर अच्छर गात, उडाया मन हरे ॥
सोकड़ल्याँ चख माँहि, करै कड़वाइयाँ ।
ते आँसू टपकंत, हिए दुचताइयाँ ॥ १ ॥
सित कुसुमाँ गूँथीसुखद, वेणी सहियाँ वृंद ।
नागणि जणै नींसरी, साँपड़ि खीरसमंद ॥
साँपड़ि खीरसमंद, दुरंग सुधारिया ।
धारा फेण कलिंद, तनूजा धारिया ॥
मापण उपमाँ और, मनोरथ मेलिया ।
मझ आटी मखतूल, कमोती मेलिया ॥ २ ॥

काँन जडाऊ कामरा, कुंडल धारण कीन्ह ।
झल हल तारा झूमका, दुहुँ पाखाँ ससि दीन्ह ॥
दुहुँ पाखाँ ससि दीन्ह अँधार निकंदवा ।
तेजोमय रथ तास, निघात पही नवा ॥
माँग फूल सिर फूल, जडाऊ मंडिया ।
खिण खिण निरखै नाह, हिए दुख खंडिया ॥ ३ ॥

प्रथम नेह भीनो महाक्रोध भीनो पछै
लाभ चमरी समर झोक लागै ॥
रायकँवरा वरी जेण वागै रसिक ।
वरी धड़ कँवारी तेण वागै ॥ १ ॥

हुवे मंगल धमल दमगल वीरहक
रग तूठो कमध जंग रूठो ॥
सघण वूठा कुसुम वीह जिणमोड़ सिर ।
विषम उण मोड़ सिर लोह वूठो ॥ २ ॥

करण अखियात चाढियो भलाँ कालमी ।
निवाहण चषण भुज वाँधिया नेत ॥
पँवाराँ सदन वरमाल सूँ पूजियो ।
खलाँ किरमाल सूँ पूजियो खेत ॥ ३ ॥

सूर वाहर चढ़ चारणाँ सुरहराँ ।
इतै जस जितै गिरनार आवू ॥
विहद खल खींचियाँ तणा दल विभाड़ ।
पोढ़ियो सेज रण भोम पाबू ॥ ४ ॥

मंछाराम

❋

डिंगल का सबसे अधिक प्रशंसित ग्रन्थ मंछाराम का 'रघुनाथ रूपक' है, जो उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में लिखा गया था। यह एक छंद शास्त्र है, जिसमें मौलिक उदाहरण इस ढंग से प्रयुक्त हुये हैं कि रामचन्द्र का इतिहास (रामायण) धारा प्रवाह-रूपेण दे दिया गया है।

—जार्ज ग्रियर्सन

मंछाराम

यदि कोई कवि केवल एक ही रचना के बल पर कवियों में शीर्ष स्थान का अधिकारी हो गया हो, साथ ही उसी रचना के बल पर श्रेष्ठ आचार्य के रूप में गृहीत किया गया हो, ऐसा दृष्टान्त विरल है। आचार्य और कवि दोनों मूलतः विरोधी वृत्ति के विद्वान होते हैं। कवि भावप्रवण, संवेदनशील और समृद्ध कल्पना का अधिकारी होता है किन्तु आचार्य का इन गुणों से काम नहीं चलता। उसमें हृदय तत्व की अपेक्षा मस्तिष्क की प्रबलता होती है। आचार्य को बौद्धिक, सहृदय किन्तु विवेकी और तथ्य परक होना पड़ता है। उसमें विश्लेषणवृत्ति विकसित होनी चाहिये। इन परस्पर विरोधी गुणों के कारण हिन्दी के रीतिकालीन कवि अच्छे आचार्य न बन सके और अच्छे आचार्य कुशल कवि न कहला सके। आचार्य और कवित्व मानों वे दो तलवारें हैं जो एक ही म्यान में नहीं रह सकती। किन्तु मंछाराम एक ऐसे ही कवि हैं, जो एक अच्छे डिंगल कवि माने जा सकते हैं। और जो डिंगल काव्यशास्त्र के श्रेष्ठ आचार्य भी हैं।

ये जोधपुर नगर के सेवग ब्राह्मण जाति के परिवार में संवत् १८२७ में जन्मे। इनके पिता का नाम बखशीराम था और वे स्थानीय ओसवालों की वृत्ति करते थे। इनकी माता का नाम रुक्मणी था। प्रारंभिक जीवन बड़े लाड़ प्यार में बीता और घर पर ही इन्हें शिक्षा दी जाने लगी। इनके चाचा हाथीराम ने ही इन्हें लिखना-पढ़ना सिखाया। अठारह वर्ष की आयु में इनका विवाह जोधपुर में ही तेजकरण सेवग

दो पुत्रों से हो गया। इनकी पत्नि का नाम राधा बताया जाता है। कवि का गृहस्थ जीवन बड़ा शान्तिमय था और पति-पत्नि दोनों ही धार्मिक वृत्ति के जीव थे। इनकी मृत्यु संवत् १८६५ में हुई। मोतीलाल मेनारिया इनका जन्म संवत् १८३० और मृत्यु संवत् १८६२ में मानते हैं, किन्तु ये तिथियाँ बाबू महताबचंद्र खारैड के अनुसार ठीक नहीं हैं।

इनके कविता-गुरू महाराजा मानसिंह के एक मंत्री भंडारी अमरसिंह के पुत्र किशोरदास थे, जैसा कि इन्होंने अपने ग्रंथ 'रघुनाथरूपक' के प्रारंभ में लिखा है—

> सदगुर प्रणाम किसोर, सचिव अमरेस सवाई।
> करै पिताजिम कृपा, तिकण गुण समझ बनाई॥

कहा जाता है कि इन्हीं भंडारीजी की वजह से इनका सम्पर्क राजदरबार से हुआ। महाराजा मानसिंह कलाकारों के संरक्षक और नाथों के भक्त थे। एक बार कवि मंछाराम ने नाथों के सम्बन्ध में एक स्तुति परक कविता महाराजा साहब को सुनाई। बस कविता को सुनकर वे बहुत प्रसन्न हुए और फलस्वरूप कवि मंछाराम को राजकीय आश्रय प्राप्त हो गया।

मंछाराम का लिखा अभीतक सिर्फ एक ग्रन्थ 'रघुनाथ रूपक' प्रकाश में आया है। कवि का ज्ञान, भाषा पर अधिकार उपलब्ध कविताओं की परिष्कृति इस बात की द्योतक है कि कवि ने और भी बहुत कुछ लिखा होगा किन्तु दुर्भाग्य से अभी तक वह उपलब्ध नहीं हो पाया है। कवि की सारी प्रसिद्धि केवल इसी एक ग्रन्थरत्न पर निर्भर है। मंछाराम स्वयं राम का भक्त था। उसने डिंगल छन्दों (गीतों) पर एक काव्य शास्त्रीय रचना की और उसी में भगवान् राम की गुण गाथा लिखी। 'रघुनाथ रूपक' नव विलासों में विभाजित है। प्रथम दो विलासों में वर्ण, गण दग्धाक्षर, दुगण, अक्षरत्याग, फलाफल, वयणसगाई, काव्य दोष अक्षरोट, शक्ति के लक्षणभेद, रसों के नाम, लक्षण इत्यादि

का वर्णन है। शेष सात विलासों में 'डिंगल' काव्य में प्रयुक्त होने वाले ७२ जाति के गीतों का लक्षण-उदाहरण सहित विवेचन है। चूंकि गीतों के उदाहरण में राम कथा कही गई है, इसी लिये ग्रन्थ का नाम 'रघुनाथ रूपक' रखा गया है। राम कथा का आधार तुलसीकृत 'मानस' ही है।

'रघुनाथ रूपक' एक रीति ग्रन्थ अथवा छंद ग्रन्थ की दृष्टि से अत्यंत मूल्यवान है। डिंगल गीतों के सम्बन्ध में प्रमाणिक व निर्दोष जानकारी देने वाला कोई ग्रंथ इसके पासंग में नहीं। यह निसंदेह उत्कृष्ट कृति है। डिंगलभाषा का यह सर्वोत्कृष्ट रीति ग्रंथ माना जाता रहा है और फलस्वरूप इसे कुछ विद्वानों ने 'डिंगल काव्य शिरोमणी' कह कर पुकारा है। आधुनिक गुजरात के छंद शास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान स्वर्गीय रामनारायण पाठक ने भी अपने प्रख्यात, विश्वकोष सदृश्य व्यापक ग्रंथ 'बृहद्-पिंगल' में डिंगल गीतों की विवेचना के लिये 'रघुनाथ रूपक' को ही प्रामाणिक आधार माना है। डिंगल कोष रचयिता कविराजामुरारिदान भी इसे प्रामाणिक ग्रंथ मानते थे। ये सब तथ्य हमें कवि की उस साधना की ओर संकेत करते हैं, जिसके कारण गहन अध्ययन, विवेक मय विवेचन और 'साधिकार-उदाहरण-सृजन संभव हो सका और जिसके कारण इतने उत्कृष्ट ग्रंथ की रचना कवि से बन पड़ी। 'मरूभूम भाषा तणों मारग' अर्थात् डिंगल भाषा वा काव्य की रीति की विधि इस शास्त्र के ज्ञान से भली भाँति अध्ययनकर्ता को प्राप्त हो सकती है।

तत्कालीन अभिरुचि और परम्परा के अनुसार लिखे जाने वाले बहुसंख्यक रीतिग्रन्थों के शैवाल जाल में 'रघुनाथ रूपक' मानों एक कमल है। नायक नायिका भेद के दलदल से दूर-राम की पवित्र कथा को उपजीव्य बनाकर सब दृष्टिकोणों से सफल रीतिग्रन्थ लिखने वाला कवि

मंछाराम धन्य है – यह जीवन के स्वाध्य और पावन अंग को लेकर चला है। यह ठीक ही कहा गया है।

मनछाराम प्रबंध मझ, राखै मनसा राम।
किधो भलो हीज काम कवि, किधो भलो हिज काम ॥

[मंछाराम ने इस प्रबन्ध (रघुनाथ रूपक) में अपनी इच्छा-राम में हो रखी, यह काम कवि ने श्रेष्ठ किया, अति श्रेष्ठ किया।]

'रघुनाथ रूपक' की प्रशंसा में ऊपर लिखित दोहे के रचयिता कवि उत्तमचंद भंडारी का एक दूसरा सोरठा भी 'रघुनाथ रूपक' के संबंध में प्रसिद्ध है।

आछो कीध इलोह, रस ले साहित सिन्धुरो।
जगसह पियण जिमोह, रूपक राम पयोध रुख ॥

[साहित्य रूपी सागर का रस लेकर ऐसा (रघुनाथ रूपक) अच्छा बनाया हुआ रामचन्द्र के यश-समुद्र का यह गीत काव्य समस्त संसार के पीने योग्य है।]

निसन्देह मंछाराम डिंगल काव्य शास्त्र के अमर आचार्यों में से है।

मंछाराम

'रघुनाथरूपक गीतांरो' में

शिववचन गीत

दशरथ नृप भवण हुआ रघुनंदण,
कवसल्या उर दुष्ट निकंदण।
रूप चतुरभुज प्रकटत दीधो,
दरसण निज मातानैं दीधो ॥ १ ॥
उदर सुमित्र लखण जीपण अरि,
धरें शेष अवतार धुरंधर।
त्रियो सत्रघण सुजक सवायक,
दीरघबाह बडो वरदायक ॥ २ ॥
ध्रवम केकई सुत खल खंडण,
मही भरत कँवरां कुल मंडण।
पल पख पहर मास जगपालक,
वधे एम चारूँ यह बालक ॥ ३ ॥
झूलां भ्रात नहूँ तक झूलैं,
पिता मात दिल देख प्रफुल्लैं।

घरमां गाद आंगणाँ धावै,
आंगणहूत गोद फिर आवै ॥ ४ ॥
कँवर बाल लीला इम करणाँ,
बीदग सुजस कठा लग बरणाँ ।
पढ़ै चतुरदस- विद्यापाई,
रिष वशिष्ट आगै रघुराई ॥ ५ ॥
सुमनस आय विलोके सारा,
बोले आपस मांहि विचारा ।
सुत यह जिण आगल दिन साजा,
धिन रे जग में अवधधिराजा ॥ ६ ॥

× × ×

परसरामजी का आगमन

भ्राजुल दुजराज क्रण जुधजाडो,
वस कुठार द्रग तायल । राह बरात ईप अजराय,
आयर ऊभो आडो ॥ १ ॥
रातो मूंभ विषम बच रोडै,
जबर इसो कुण जोडै । मो ऊभां संकर चो कोमड,
ताणमीच किण तोडै ॥ २ ॥
व्याकुल जान बिना जल बाडी,
कांपत सकल कराली । उमगे उर दशरथनृपवाली ।
आया खड़े अगाड़ी ॥ ३ ॥
खिमजे धनु जीरण दिन पूटो,
बोले राम बदीता । सदन उतंग देख दुव सीता,
तृण तोडण मिस तूटो ॥ ४ ॥

दुगम पिनाक सहल तो दीसै,
विगतै इमैं सुण बत्री। खंडे मैं वसुधा बिण खत्री,
कीधी वार इकीसै ॥ ५ ॥

सहस भुजांधर चले सिरायो,
कर जुध सेन निकंदण। डर मो देख गाधनृप नंदण,
प्रगट रिखी पद पायो ॥ ६ ॥

दिल मत धरो भरोसै दूजै,
क्रोध न करो अकाजा। देव दीन सुरभी दुजराजा,
यह रघुवंशी पूजै ॥ ७ ॥

मोडे बाण सरासर म्हारो,
जो तोमैं बल जालम। मुनिवर तेज देखता आलम,
सोख लियों गह सारो ॥ ८ ॥

अत असतत धर परस अधारे,
चले बिपिन तप चाहे। इम घंट सहित सुवेश उमाहे,
पुर अवधेश पधारे ॥ ९ ॥

देवताओं की प्रार्थना

रावण दिन अमर सकल मिल आया,
करी अरज सांभल करतार।
राज बिना मारै कुण रावण,
भूरो फरण उतारै भार ॥ १ ॥

इला सखत मंडियो असुरांणों,
संकट जीरो अकथ सहां।
दीनानाथ ! तूझ विन दुखरी,
किणनैं जाय पुकार कहां ॥ २ ॥
राम ! निचंत आप हुय रहिया,
सुध म्हांरी वीसरियां सांम।
लेखा सकल विसेक विलोके,
बोले जद राघव वरियांम ॥ ३ ॥
ले वनवास हराय महालछ,
कप हैंज्जम अणपार कस।
कटा हिव भाले किरमालां,
दस सिंखालां सीस दस ॥ ४ ॥
सुण वाणी तन करप मिटे सह,
छक वंदे मन हरष छया।
नै जै नद पुणतां मुख जाजा,
गुणता वसं सुरलोक गया ॥ ५ ॥

खरदूषण और त्रिसरा का वध

सुणी सुपनखां वैण चढ़े हांकियां साकुरां,
खरदूषर त्रिसर पल भाल खांगा,
पूर वन पदरियां ॥

उरस छलता दवा आविया अदावी,
आखता असुर रघुवीर आगां,
कोप लोयण कियां ॥ १ ॥
पेख दल दाशरथ रेसनू पयंपै,
सहोदर ! सिया ले तूझ साथे,
ऊभ ईसंतनू ॥
जोप प्रहतो रुधर डरॅलां ज्यानकी,
हणू'ला सकोई मूझ हाथे,
उडाडा अंतनू ॥ २ ॥
कीघ अलगां उभे पछाडो आणकल,
धसल सामें दलां सीस धाया,
छाकिया छोहग्र ॥
कत कमला कलह रटक पाणां करे,
धाया बाणां करे कटक धाया,
मरूत जण मोहग्र ॥ ३ ॥
उठारं सहस जोधार असुरेसरा,
लड़े हरि चापड़े मार लीधा,
उचार दंध अमररा ॥
हजारू साठ खोले चखम पल हिकै,
कपल शृनि आप दे भसम कीधा,
सुवण ज्यूं सगररा ॥ ४ ॥

फौज का प्रयाण

डेरा थी सार्ने ड्वर, पद इम कीध पयाण ।
करवा सुरां सहायकज, असुरां सूं आराण ॥

राण दिम हालिया कांण आराण रूव,
कोह . असमांण चढ़ माण ढंका ।
गोम नेजा हलक रागसिंधु गहक,
डहक डंडाहडां सीस डंका ॥
बबर जयं नील सुग्रीव अगद जिसा,
घले पत माल सा वीर बंका ।
बांध चालां पडे अडे नम महाबल,
लडण दसकंध सूं लेणे लंका ॥ १ ॥

लंका लेवण लंगरी, कप फोजा इधकात ।
प्रलै करण जाणै प्रथी सालुलिया दध सात ॥

दध सात सालुले प्रलै करवां प्रथी,
कीस दल पूरसां वहै काया ।
घट दिगपाल दिस विदिस हुयचल,
विचल तजी मरजाद घड़ अचल ताया ॥
चहलतिहुँलोक चल सिद्ध आसण चले,
हरीताली खुली सूलहाथा ।
कमठ पर भार पडे छिले रस कचरकां,
मचरकां सेसारा हले माथा ॥ २ ॥

माथा हाले सेस मह, पड़ै भार अणपार।
कूच करै आपा कंठठ, लंगर लीधा लार॥
लार लंगर लियो पदम दस आठ कप,
तीय घर कूल वप जोस ताजा।
राम रघुवीर मग काज तूनीर सूं,
सोखवा नीर धनु तीर साजा॥
विकल जल जीव लख जलध कर जोर कर,
रूप दुज हुय, कह्यो राम राजा।
धार तुव नाम, तिरवाय गिर धूपरैं,
प्रभू मो ऊपरैं बांध पाजा॥ ३॥
पाजा बांधे समद पर, जंग सकाजा जोध।
सेत थपे रामेस सिव, उतरे पार पयोध॥
पयोधर पार पय ऊतरे, अवध पत,
पाज बंध चार सैं कोस पैरा।
दूल असुरांड पड भूल सुध माण हट,
फिरै चित दूल जिम चाक फेरा॥
तबै मंदोदरी राव सिय सीख तज,
कंथ हिव चाख फल पाप केरा।
कीध दइवाण आजाण भुज लंकरै,
दाणवूं आण नजदीक डेरा॥ ४॥

—:४:—

सूर्य्यमल्ल

धारावाहिक रूप से जो साहित्य-परम्परा अपभ्रंश के काल से हजार बरस तक चली आई, उसे ही सूर्य्यमल्ल ईसा की बीसवीं शती के द्वितीयार्ध तक पहुँचा कर विदा हो गये। अपने काव्य और कविता को Lay of the Last Mins-trel बना गये और वे स्वयं बने the Last of the giants.

—डॉ० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या

सूर्य्यमल्ल

महाकवि सूर्य्यमल्ल मिश्रण को 'वीर रसावतार' कहा गया है। 'वीर रस' और 'डिंगल काव्य' दोनों का नाम इतना अधिक हिलमिल गया है कि एक की याद आने पर दूसरा स्वयं साकार हो उठता है। यह डिंगल कविता ही तो है जिसमें वीर रस का सांगोपांग और ओजस्वी वर्णन किया है। वीर रस वर्णन की अनेक रूढ़ियाँ परम्परा से चली आई हैं। प्रत्येक युद्ध के वर्णन में वीर परस्पर भिड़ जाते हैं। रक्त के फौव्वारे फूट पड़ते हैं। तलवारों की तेजी और चमक बिजली को मात करती है। घोड़ों के खुरों से पृथ्वी कांप उठती है। शेषनाग घबरा जाते हैं। कोल, कमठ व्याकुल हो उठते हैं। धरती पर रक्त के परनाले बह निकलते हैं। भूमि रुंड-मुंडों से पट जाती है। वीरों के कौतुक को देखकर सूर्य भी स्तम्भित होकर अपना रथ रोक लेता है। गजमुक्तायें रक्त में बह निकलती हैं। कमध (धड़) गिरते नहीं हैं. वीरता पूर्वक लड़ते रहते हैं। गिद्ध स्यार, कौवे खुशियाँ मनाते हैं। शिवजी, वैताल, भूत, जोगनियाँ साथ लिये अपनी मुंडमाल बनाने में जुट जाते हैं। हरसब समझ कर प्रसन्न होते हैं। और वीरों के पराक्रम का तो पूछना ही क्या ? वीर बाणों की अटूट वर्षा कर रहे हैं, मानों मूसलधार वर्षा की लगातार बूंदे। बड़ी और छोटी ध्वजायें फहरा कर दसों दिशाओं में फैल जाती हैं, मानों शेषनाग की जिव्हा निकली हो अथवा होली की ज्वालायें फूट पड़ी हों। हाथियों की घटा, रणभेरी और कवचों की कड़ियां बज उठती हैं। घोड़ों के पाखरों की झनझनाहट, बाणों की

टंकार और धनुष की टंकार से सारा दिगन्त कांप जाता है। रण क्षेत्र में खेत रहने वाले वीरों को वरण करने के लिये अप्सराओं में होड़ लगती है। प्रायः सभी कवियों ने वर्णनात्मक चित्र ही खींचा है। भरती काव्य कला के बल पर सजीव वातावरण की सृष्टि की है किन्तु सूर्यमल्ल वास्तव में महाकवि हैं। जहाँ उन्होंने वीर रस के अंतर्गत युद्धों का सजीव और परम्परागत वर्णन किया है वहाँ उन्होंने वीरों के अन्तर की भावना, रणोन्मुख योद्धा की अभिलाषा, युद्ध में पुत्र को विदा करती हुई माता की कामना और पति को रण कंकण बांधती हुई वधु के मन की व्यथा, सती के उत्साह, धरती की पुकार और मानवीय संवेदनाओं की भी सबल अभिव्यक्ति दी है। यदि हम वास्तविक वीर भावना का रसास्वादन करना चाहते हैं तो हमें 'वीर रसावतार' महाकवि सूर्यमल्ल मिश्रण की कविताओं को देखना चाहिये। इस क्षेत्र में हिन्दी का कोई दूसरा कवि इनकी बराबरी नहीं कर सकता। वे अपने क्षेत्र के एक छत्र सम्राट हैं।

महाकवि सूर्यमल्ल का जन्म चारणों की मिश्रण शाखा के एक प्रतिष्ठित कुल में सन् १८७२ में बूँदी में हुआ। इनका परिवार बूँदी नरेशों का कृपापात्र था और इसीलिये महाकवि सूर्यमल्ल मिश्रण को एक बना बनाया आश्रय मिल गया। हिन्दी के प्रसिद्ध कवि देव की भाँति इन्हें इधर उधर भटकना नहीं पड़ा।

सूर्यमल्ल का शास्त्रीय ज्ञान बहुत बढ़ा चढ़ा था। वे संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, डिंगल आदि अनेकों भाषाओं के निष्णात विद्वान थे। वे शकुन शास्त्र, धर्मशास्त्र, चौदह विद्याओं, मीमांसा, व्याकरण, न्यायशास्त्र, शालिहोत्र, दर्शन, इतिहास आदि विषयों के अच्छे जानकार थे। बूँदी नरेश रामसिंहजी की आज्ञा से इन्होंने विक्रम संवत् १८६७ में 'वंश भास्कर' नामक एक बृहदाकार काव्यग्रंथ रचा था, जिसमें बूँदी राज्य का इतिहास वर्णित है। इस इतिहास में प्रसंगवश राजस्थान की

अन्य रियासतों सम्बन्धी इतिहास भी थोड़ा बहुत आ गया है। भारतीय कवि इतिहास को प्रायः गंभीर दृष्टि से नहीं लेता। ऐतिहासिक घटनाओं के शुष्क कंकाल को अपनी कल्पना की दृष्टि से और काव्यानुभूति से सजीव पुतला बनाकर हमारे सामने रख देता है ऐसा करने में प्राय ऐतिहासिक तथ्यों की अवहेलना हो जाती है। हमारे अधिकांश वीर काव्यों में यथा-पृथ्वीराज रासो, हम्मीर रासो आदि में हमें यही प्रवृत्ति स्पष्ट दिखाई देती है। पर 'वंश भास्कर' इसका अपवाद है। यह शुद्ध ऐतिहासिक मूल्यों पर ठीक उतरता है। 'वंश भास्कर' की भाषा को लेकर विद्वानों में कुछ मतभेद रहा है। वस्तुतः इसकी भाषा पिंगल है जो कृत्रिम डिंगल का अनुकरण करती ज्ञात होती है।

इनका दूसरा प्रसिद्ध ग्रन्थ 'वीर सतसई' है और अपूर्ण है। यह डिंगल का एक उत्कृष्ट ग्रन्थ है। 'वंश भास्कर' उत्कृष्ट इतिहास ग्रन्थ होने पर भी, कवि की प्रतिनिधि रचना के रूप में ग्रहीत नहीं किया जा सकता। इस सम्मान की अधिकारी तो हमारी 'वीर सतसई ही है। लगभग ३०० दोहों में कवि ने जिस कौशल और नैपुण्य के साथ राजस्थान की वीर भावना को स्वरूप दिया है, वह आश्चर्यजनक है। राजस्थान की परम्पराओं, वीरों के उन्माद, कायरों की आशंका, सतियों की भावनायें और तत्कालीन परिस्थितियों का इससे अधिक ज्वलंत चित्र शायद ही कहीं मिले। उनका भावानुरंजित और ओजपूर्ण वर्णन निसंदेह उच्चकोटि का है। भाषा प्रवाह युक्त और और प्रांजल है। अभिव्यक्ति सहज है। कवि हमारे मर्मस्थल को मानों प्रभावित करता चलता है। इनका तीसरा ग्रन्थ 'बलवन्त-विलास' है, जिसमें रतलाम-नरेश बलवन्तसिंह के चरित का वर्णन है। चौथी रचना छंदोमयूख' नामक एक छंद शास्त्र है। कहा जाता है कि इन्होंने 'धातुरूपावली' तथा 'सती-रासो' नामक दो ग्रन्थ और भी रचे थे परन्तु वे ग्रन्थ मिल नहीं पाये हैं।

कवि का स्वभाव अपनी भाषा की तरह ही अक्खड़ जान पड़ता है। वे लोगों से मिलना कम पसंद करते थे। इनमें अपनी शिक्षा को लेकर कुछ अभिमान भी आ गया था। वे अनाड़े चाकरों से मिलना तुरन्त पसंद नहीं करते थे। और इनका स्वभाव बड़ा रूखा और चिड़चिड़ा था। व्यवहार में बड़े कड़े थे। और यह सब अकारण ही नहीं था वे शराब के बेहद शौकीन थे और चौबीसों घंटे शराब में मस्त रहते थे। अनेक किंवदन्तियाँ प्रसिद्ध हैं कि सूर्यमल्ल शराब के बिना क्षण भर भी नहीं रह सकते थे। कहते हैं कि अपनी पत्नि के देहान्त पर भी वे शराब पीकर शव यात्रा में गये थे। इसी प्रकार अपने एक मित्र की मृत्यु का समाचार सुन कर उन्हें आन्तरिक वेदना हुई। कवि ने अपने नौकरों को तुरंत मदिरा लाने का आदेश दिया। शराब पीने के बाद मानों इनकी सरस्वती स्फुरित हो उठती थी। वे धारा प्रवाही गति से कविता बोलते चले जाते थे। बूंदी नरेश की ओर से रखे गये दो लेखक शीघ्रता से कविता को लिपिबद्ध करते थे और इस प्रकार इनके सभी ग्रंथों की रचना हुई।

कवि सूर्यमल्ल मिश्रण शराब को सदैव पीते रहे और शराब उनकी जिन्दगी को पीती रही। और एक दिन उन्हें खुद को पी गई। संवत् १६२५ में उनका देहान्त, अल्पायु में ही हो गया। शराब ने उनके शरीर को क्षीण किया, पर वह उनकी मेधा शक्ति को क्षीण न कर सकी। उनके स्वभाव को चिड़चिड़ा बनाया पर उनकी मानवता को गिरा न सकी। वे शराबी थे, पर मनुष्य थे अपने आश्रय दाता महाराजा रामसिंह बूंदी नरेश की आज्ञा से वंशभास्कर लिखना उन्होंने प्रारम्भ तो किया, परन्तु एक स्थल पर मतभेद होने पर उन्होंने महाराजा के आदेशानुसार परिवर्तन करने से इन्कार कर दिया। 'वंश भास्कर' अधूरा ही रहा। सत्य उपेक्षा कवि से नहीं की जा सकी। अन्त में उनके

दत्तक पुत्र मुरारिदान द्वारा ही उसे पूरा किया गया। राजाश्रित होने पर भी यह डिंगल कवि पूर्ण स्वाभिमानी थे।

चारण लोग सूर्यमल्ल को अपना सबसे बड़ा कवि मानते हैं। इनके मत में ऐसे कवि शताब्दियों के बाद ही जन्म लेते हैं। वास्तव में कविता की दृष्टि से उनकी देन उच्चकोटि की है। उनकी कविता के सम्बन्ध में पण्डित मोतीलाल मेनारिया का एक लम्बा उद्धरण देने का लोभ संवरण नहीं कर पा रहा हूँ। यथा 'विश्व के उन समस्त कवियों में जिनकी रचना में युद्ध वर्णन मिलता है, पाश्चात्य विद्वान महाकवि होमर का स्थान सबसे ऊँचा मानते हैं। और तो और, होमर की तुलना में व्यास और वाल्मिकी के युद्ध वृत्तान्तों को भी उन्होंने अस्वाभाविक, अतिशयोक्ति पूर्ण एवं आवश्यकता से अधिक अलंकारों से लदे हुये बताया है। यह अपना अपना मत है, और इस संबंध में यहां कुछ कहना अप्रासंगिक होगा। पर होमर के युद्ध वृत्तान्तों की यह विशेषता है कि उन्हें पढ़ते समय पाठक यह नहीं महसूस करता है कि वह किसी पुस्तक में युद्ध का वर्णन पढ़ रहा है, बल्कि ग्रीस और ट्राय की धावा मारती हुई सेनाओं की पदध्वनि, सैनिकों की खूंखार हुंकार आदि स्पष्ट रूप से कानों से सुनता है और रण क्षेत्र के रोमांचकारी दृश्यों को अपनी आंखों से देखता है। यही गुण हम सूर्यमल्ल की रचना में भी पाते हैं। वंश भास्कर में कई स्थानों पर युद्ध का वर्णन है और शायद इसीलिये यह काव्य-ग्रन्थ भी माना जाता है, नहीं तो उसके अधिक भाग का सम्बन्ध काव्य की अपेक्षा इतिहास से अधिक है। जिस समय सूर्यमल्ल युद्ध का वर्णन करना प्रारम्भ करते हैं, वे किसी भी बात को अधूरी नहीं छोड़ते, युद्ध सम्बन्धी किसी भी विषय को सरलता से नहीं देखते। सेनाओं की मुठभेड़, वीरों का जय नाद, कायरों की भगदड़ घायल वीरों का करुण क्रन्दन इत्यादि के सिवा जिस समय योद्धा वार करता है, उसकी तलवार कैसी दीख पड़ती है, रक्त की सरिता किस

प्रकार खन खल शब्द करती हुई समरस्थली में प्रवाहित होती है और मांस के लोभ से लाशों पर बैठे हुये गीध दूर से कैसे दीख पड़ते हैं आदि घातों का नाना प्रकार की उपमा उत्प्रेक्षाओं द्वारा वे ऐसा सुन्दर, ऐसा स्पष्ट और ऐसा सबल मज़मून बांधते हैं कि पढ़ते ही हृदय सहसा हिल जाता है।

यह है हमारे महाकवि सूर्य्यमल्ल की काव्य विशेषता, स्वभाव से अक्खड़, प्रवृत्ति से रसिक, मदिरा के प्रेमी, विद्या के सेवी अनेक भाषाओं के धुरन्धर विद्वान, सरस काव्य के स्रोत, काठिन्य के प्रेत, स्वाभिमानी और कविता के लाड़ले, प्रतिभावान् क्रांत कवि। ऐसा विचित्र व्यक्तित्व था, इस महाकवि का!

सूर्य्यमल्ल

उम्मेदसिंह के युद्ध का वर्णन

(दोहा)

ससि अंबर वसु इक समा, विक्रम सक्कगत वेर।
बुंदियपुर बाजार विच, झरिग बाढ असि भेर ॥ १ ॥

(मुक्तादाम)

अमावसि सावन मास अनेह, मच्यो इम बुंदिय खग्गन नेह।
धई नभ गिद्धनि चिल्हनि पंत्ति, घुमंडत गृद्धनचंचुनपत्ति ॥२॥
लगी लुमि धुम्मन अच्छरि लैन, गुथ्यां रसभार विमानन गैन।
रच्योइत तंडव नारद रारि, झूक्यो अपिङ्गाँमहती झनकारि ॥३॥
उड़े सिर भेजत उद्धहि ईस, वहैं इक चंडिय के भुज बीस।
चटट्टहिं रत्त खिलैं चउसट्ठि, धधक्कहिं वानन गावन गट्ठि ॥४॥
चुरैलिनि मंडत फालन चाल, लगावत डाइनि घुम्मर ताल।
बजै लगि खग्गन खग्गन बाढ, गिरैं भट भीरु भजैं तजि गाढ ॥५॥
उमेद दिनेस रच्यो खग खेल, दुरयो सठ घुग्घुव दुग्ग दलेल।
धबैं असि खुप्परि टोपन फारि, बहैं जनु सब्बुवतंति विदारि ॥६॥
फिरैं कटि हड्डन खंड करक्कि, भरैं उड़ि धारन चूर झरक्कि।
कटैं सह सात्थिन जानुव जंघ, लुथ्यों गंज सु ढिन खंडन संघ ॥७॥

फट्टकहिं कट्टहिं कालिक फिक्क, मचक्कहिं टोप कपालन भिक्क।
उड़े सिर फुट्टत भेजन ओघ, मनों नवनीत मटक्किय मोघ ॥ ८ ॥
मचक्कहिं रीढक टंक अमाप, चटक्कहिं ज्यों मिथिलापुर चाप।
घसैं कढि लोचन सोनितधार, चरैं सिसु मन्द्ध विलोम किवार॥ ६ ॥
फट्टैं गल स्वास बजैं विकरार, धमैं धमनी जनु लग्गि लुहार।
कट्टैं हिय छत्तिय फट्टि किवार, सु ज्यों हृद लोहित कंज सुढार॥१०॥
परैं कढि अंत अपुन्न प्रकारि, फनीगन जानि टिसारन फारि।
परैं छुटि सचित ग्रान अगाल, मनो पय पानिय लोन मिलान॥११॥
घनैं फटि डाच कढे रद बङ्क, किधौं धृत हस्तिय रङ्क कलङ्क।
गिरैं रसना कढि भग्गन ग्राम, चढ़ैं नचि नागिनि ज्यों पय श्याम
॥१२॥
लगैं दग मुन्द्ध फरक्कत लीन, मनों उरझी चनसी मुख मीन।
छलैं छत रच छछक्कन छुट्टि, फवैं जनु गग्गरि जावक फुट्टि
॥१३॥
झुकैं असि मच दुहत्थन झारि, मनौं रजकालि सिला पट मारि।
छुटैं फटि टेटिय लेटिय लंब, तनैं पट जानि इविंद कदंब॥१४॥
मचैं रन टोप उडैं फटि मत्थ, अलाबुन जानि अतोनन हत्थ।
चढैं दग लग्गि कनीनिय काल, मनों कुरलोहित मोरन माल
॥१५॥
चलैं फटि ढाल बकव्वर चीर, सु ज्यों तरु ताडन पत्त समीर।
घसैं हिर गोजिय गारत गित, मनों पटरा बटरा त्रिव चित्र
॥१६॥

रटैं फटि कोच करी रननंकि, झरैं घन बादन ज्यों झननंकि।
घटैं दम मत्त बकैं छकि घाय, मनों मद पामर जीह जड़ाय॥१७॥

कढैं बपु छक्कि बरच्छिन ग्रात, तृणध्वज अग्ग कि गज्ज प्रभात।
लगैं निकसैं छकि पट्टिस लाल, मनों परतीयन के कर जाल
॥१८॥

तुटैं फटि हड्ड चटच्चट संधि, चटक्कत प्रात गुलाब की गंधि।
उडैं रितु मत्त किते तनु तुङ्ग, थेइथेइ नच्चत पुङ्ग मृदुङ्ग
॥१९॥

बबक्कत डाच कितेरुन बैन, मनों बड बक्कर टक्कर मैन।
गिरैं बक्कत पंगुलि गात, मनों कठछम्पर पत्थर पात॥२०॥

छुटैं पल जानु कढैं नल हड्ड, मनों रद बारन बंगर बड्ड।
लटक्कत पाय रकाबन रुक्कि, मनों तप सिद्ध अधोमुख झुक्कि
॥२१॥

मलंगत छत्तिन के क्रम मप्पि, मनों नट पट्टरि पाय मलप्पि।
घटैं घन पायक सायक सोक, उडैं सरघा घन ज्यों तजि ओक
॥२२॥

छके कति घूत फिरे सुधि छोरि, बनैं जनु बालक मंमह मोरि।
गिरैं सर बिद्ध घनें सिर तत्त, मनों सरघान तजे मधुछत्त॥२३॥

तरैं घन संगिन भिन्न सरीर, कुमारिनि के जनु उज्ज कीर।
धकैं बहु भेव भिजे गल बत्थ, किधौं रन मल्ल अपूरब कत्थ
॥२४॥

जगाव्वत हाक रचावत जंग, लगावत भैरव नट्ट मलंग।
घसैं चढि डाकिनी के मृत छसि, मनों कि विदूषक कौं तिय मत्ति ॥२५॥

थटैं पय इक्क किते छक ओप, किते इक नैंन लखैं भरि कोप।
करैं कटि जीह किते अ अ कूक, मनों कि परागिर प्रेतित मूक ॥२६॥

क्रमैं इक ओठ किते इक कान, घनैं मुख अद्ध रचै घमसान।
किलैं इक-हत्थ किते गत केस, बनैं बहुरूप मनों नव वेस॥२७॥

मिलैं रसना कढि नक्कुट मूल, फरैं भुजंगी कि लगी दिलफूल।
किते कर टेकि उठैं रन रत्त, मनों मदछाकन पामर मत्त ॥२८॥

रहैं कति गिद्धन को गल लाय, कहैं कति हू रब ऐंचत हाय।
बकैं कति मात पिता तिय दैन, गिरैं कति मोहित उच्छलि गैन ॥२९॥

भर घन सावन को इत तुड्डि, वरूथ घटा इत आयुध बुड्डि।
वहै पुर बुंदिय सोन बाजार, धपी जनु जोह सरस्वति धार ॥३०॥

गिरैं जल बद्दल गंग सु गाथ, पुर स्त्रिय अंसुव जामुन पाथ।
पढी इम बेनिय पत्तन बीच, मिलैं बहु मुक्ति जहाँ लहि मीच ॥३१॥

पऱ्यौं रन बुंदिय सावन अद्ध, दुघाघाँ अति ज्वाल गंगोपुर दद्ध।
चुहट्टन लग्गिय लुत्थन लुत्थि, बियारिग हट्टन पट्टन पुत्थि ॥३२॥

समाकुल रुएड परे, खिलि खंड, ढरे बनिजारन के जनु टंड।
डडक्कत डाहल के डमरूक,घुरावत घाय घने जनु घूक ॥३३॥
रटैं सिर मार अटैं कति रुण्ड,मिटे कति जोर फटैं कति मुण्ड।
बरैं सिर मंगि भरैं हर रैल, छकैं कति छोह हकैंरन छैल ॥३४॥
लगैं कति कंठ लरत्थर पाप, जगैं कति प्रेत ठगैं भट जप।
लखैं कति हूर चखैं मिलि लाह, नखैं नम फूल रखैं गिनि नाह
॥३५॥
फिरैं कहुँ कोच खिरैं लगि खग्ग,फिरैं कति मत्त गिरैं जनु फग्ग।
चिरैं सिर माढ गिरैं अति चोट, घिरैं नद सोन तिरैं कहुँ घोट
॥३६॥
जगैं उडि अग्गि झरैं असि जोर, हरैं भट केक टरैं जिम ढोर।
दरैं कति कुप्पि धरैं धक दाव, भरैं कति भूरि मरैं मृत भाव
॥३७॥
मरैं थकि स्यात परैं कहुँ मूढ, अरैं कहुँ हूर वरैं नवऊढ।
रचैं हरि केक लरैं धकि रोस, हरैं शिप केक सरैं तजि हास
॥३८॥
फटै धर प्रेत बटैं गिर फाँक, लटैं मन केक कटैं उर लाँक।
खुलैं कहुँ नैन डुलैं कछु खग्ग, झुलैं कहुँ उद्ध फुलैं मुख झाग
॥३९॥
छुलक्कत घायन रत्त छलक्क, ठरज्झत केस बनैं अकचक्क।
नहक्कत तंतिन सिंधुव तार, दहक्कत भूतल देत दरार
॥४०॥

झनंकत पक्खर बेविध घंट, घमंकत घुग्घर घंटन घंट ।
बही कुपपावलि उग्र प्रसान, मनों बढ़ पत्तन दिग्यन ज़ान ॥४१॥

गवाखन जालिन के पट डारि,रही रन सुन्दिय नारि निहारि ।
बढी घन मार मची हयवाह,रुक्यौ रवि अंबर चाह सिगाह ।४२॥

अर्‌यो नृप छोनिय लैन उमेद,लिख्यो इम देत दलेलहिं खेद ।
बंडे गढ सम्मुह छेकि बज़ार, मिली तहँ शत्रु हजारन मार ॥४३॥

चले सर चंड चटक्कैं चाप, मचावत पंखन सोर प्रमाप ।
बहैं बरछी असि तोमर तोम,बनैं नर कायर लोम विज़ोम ।४५॥

उरज्झत अंत्र कटारन तारि,गही ज़नु नागनि अकुस डारि ।
लगैं खर खंजर पंजर लीन, मनों प्रतिज़ोम परैं जल मीन ॥४५॥

चलैं फटिपात गदा सिर चीर,मनौं तरबूज़ हनें कर कीर ।
चलैं तब्रि म्यान छुरी पछ चाह,मनौं पित झारिन झारि प्रवाह॥४६॥
झरफ्फर चिल्लहनि गिद्धनि झुंड, मरोरत चंचुन ऐंचत मुन्ड ।
झिलोलत स्यार सिवागन कंक, नचै बहु डाकिनि प्रेत निसंक
॥४७॥
घनै हननंकत घोटक घुम्मि, गिरैं कति भिन्न गिरे छकि भुम्मि ।
कुसागल छुट्टत तुट्टत तंग, मचक्कत मारुत प्रोथन भंग
॥४८॥
परैं मजरैं जर जीन पलान, छिने करिका बिनु लेत उड़ान ।
बहै पुर वद्दिन म्चरु धार, घपी चढि बीथिन बिपिन धार
॥४९॥

मनो यह दुग्ग छुधातुर पाय, दये बलि मानव समर राय ।
समाहल लुथिन लुथिन बड्ड, चढ़े पल विकरम हड्ड चुहड्ड ॥५०॥

सह्यो घन चोरन को दुख जीय, लगैं अध दु'दिय भूपति हीय ।
घनैं दिन-जुग्गि वियोग्ग भार, कियो जनु सोनित रंग सिंगार ॥५१॥

दलेल लखी तप की तरवारि, धुज्यो धत दुग्ग पलायन धारि ।
सुन्यो यह जैपुर आमेर, भार कियो निज मंत्रिय भ्रात तयार ॥५२॥

× × ×

वीर सतसई दोहे

नथी रजोगुण ज्यां नरां, वा पूरी न उफांण ।
वे भी सुणतां ऊफणै, पूरा वीर प्रमांण ॥ १ ॥

ढाकी ठाकर रो रिजक, ताखां री सिर एक ।
गहल मुवां ही ऊतरै, सुणिया इसर अनेक ॥ २ ॥

खागे में धर में अगट, कायर जबुक काम ।
सीहाँ केहा देसड़ा, जेथ रहै सो धाम ॥ ३ ॥

काली नाहक की डरै, खेती लाभ म खोय ।
धरती रा जेथी धणी, हूं कत तेथी होय ॥ ४ ॥

कंत न घोडी ठाकुरां, कालो जाण करंड ।
इण मोगो रा जहर थो, दूजो की जमदण्ड ॥ ५ ॥

मोला आणी भूलिया, घरमों आटों धान ।
एथ धायौ सीहणी, कंवर जयौ सो धान ॥ ६ ॥

माला चाल म बीसरे, मो थण जहर समांण ।
रीत मरंतां ढील की, ऊठ थियो घमसाण ॥ ७ ॥

सायण ढोल सुहावणां, देणौ मो सह दाह ।
उरसां खेती बीज धर, रजवट ऊलटी राह ॥ ८ ॥

निधड़क सूतो केहरी, तोभी विमुहा पांव ।
गज डैडा धीर न धरै, बन्न पड़ै वधराव ॥ ९ ॥

भंडा ओलाडै गयण, वसुधा पाडै धोह ।
तो भी तोरण बींद तिम, धीरो धीरो नाह ॥१०॥

आज घरे सासू कहे, हरख अचांणक काय ।
बहू बलेवा हुलसै, पूत मरेवा जाय ॥११॥

थाल बजंता हे सखी, दीठा नैण फुलाय ।
बाजां रै सिर चेतणो, भ्रूणां करण सिलाय ॥१२॥

देख सखी होली रमैं, फौजां में घर एक ।
सागर मंदर सारखा, डोहै अनड़ अनेक ॥१३॥

देख महेली मो धणी, अजको वांग उठाय ।
मद प्यालां जिम एकलौ, फौजां पीवत जाय ॥१४॥

कंत कहंता सहगमण, कीधां रहसी साय ।
घोड़ौ अच्छर छोड़सी, सो धण मलै हाय ॥१५॥

कृपाराम

काल के साथ युगों से मनुष्य का संघर्ष चला आया है और इस चिर संघर्ष का पूर्ण फैसला अभी तक नहीं हो पाया। एक दिन मनुष्य नन्हें बालक के रूप में जन्म लेता है, प्राकृतिक व्यवस्था के अनुकूल ही विकास पाता है, जीवन के सुखों और दुखों का उपभोग करता है, और एक दिन पुनः काल के कराल गाल में समा जाता है। मौत और जिन्दगी की इस लड़ाई में प्रायः सर्वत्र मौत का पलड़ा भारी रहता है। मनुष्य जब मौत पर इस प्रकार विजय नहीं पा सका तो अपने अस्तित्व की याद छोड़ने के लिए उसने देवल, कीर्तिस्तंभ स्मारक, मकबरे और मीनारों का निर्माण किया। कुएँ खुदवाये, तालाब बँधवाये और अनेक जनहित के कार्य किये। मृत्यु के उपरान्त भी यश और प्रसिद्धि रहे, ऐसी कामना मनुष्य में होना सहज स्वाभाविक है। प्रायः सभी मनुष्यों में यशलिप्सा व अमरत्व की भूख एक कमजोरी के रूप में होती है। इस कमजोरी के लिए किसने, कब और क्या नहीं किया? पर विचित्र बात यह है कि कवि कृपाराम अथवा कृपादान ने इस बहुत बड़ी कमजोरी पर विजय पाकर अपने सेवक राजिये को अपनी प्रतिभा और कवित्व शक्ति के बल पर अमर कर दिया और स्वयं भी प्रसिद्ध हो गये।

कृपाराम के जीवन, जन्म, मृत्यु आदि के संबंध में हमें विशेष जानकारी नहीं है। ये जोधपुर राज्यान्तर्गत गांव खराड़ी के निवासी खिड़िया शाखा के चारण थे। इनके पिता का नाम जगराम था। कवि

की प्रारंभिक शिक्षा घर पर ही हुई। बड़े होने पर ये सीकर के रावराजा लक्ष्मणसिंह के पास चले गये और फिर वहीं रहे। सीकर राजा साहिब से इन्हें 'ढाणी' नामक गांव मिला जो 'कृपाराम की ढाणी' के नाम से मशहूर है। इनके एक सेवक था—राजिया। राजिया बड़ी निष्ठा और प्रेम के साथ कवि की सेवा करता। इनकी छोटी से छोटी आवश्यकताओं का ध्यान रखता। कवि के सम्पर्क में रहकर राजिया भी काव्य रसिक हो गया था। अपने सेवक के सेवा कार्य से प्रसन्न हो कर कवि ने उसे अपनी कविता द्वारा अमर कर दिया। इन्होंने राजिया को संबोधित कर कुछ सोरठों की रचना की, जो 'राजिया रा सोरठा' नाम से प्रख्यात है। लोकप्रियता की दृष्टि से शायद ही किसी अन्य कवि की डिंगल रचनायें इतना प्रसार पा सकी हो। इन सोरठों की भाषा डिंगल है, किन्तु बड़ी सरल और प्रसाद गुण से युक्त। यदि हम राजस्थान के घोर देहातों में भी चले जाँय तो भी हमें वहाँ के अनपढ़ निवासियों, जन साधारणों में 'राजिया रा सोरठा' के नमूने सुनने को मिल जायेंगे। कवि की अन्य रचनायें उपलब्ध नहीं हो सकी हैं किन्तु कहा जाता है, कि इन्होंने 'चालक नेची' नामक एक नाटक और अलंकारों का एक ग्रन्थ भी रचा था। कवि का रचना काल संवत् १८६५ के आसपास निश्चित किया गया है।

'राजिया रा सोरठा' सोरठों का एक छोटा सा संग्रह है जिसमें नीति और उपदेश की अनेक बातें भरी पड़ी हैं। वे इतनी सार्वदेशिक हैं कि जनता ने उन्हें सूक्तियों और बातचीत में कहावतों के रूप में स्वीकार कर लिया है। यथा—

पाटा पीड़ उपाय, तन लागां तरवारियाँ।
वहै जीभ रा घाव, रती न ओषद राजिया॥

(शरीर में तलवारों के घाव लगने पर पट्टी द्वारा उसकी पीड़ा का इलाज हो सकता है। पर हे राजिया! जीभ के घावों की रत्ती भर भी दवा नहीं है।)

लावा तीतर-लार, हर कोई हाका करे।
सिंघाँ तणो शिकार, रमणो मुसकल राजिया ॥

(लावा और तीतर जैसे निरीह पक्षियों के पीछे प्रत्येक व्यक्ति हाँक लगा सकता है, किन्तु हे राजिया! सिंहों का शिकार बहुत कठिन कार्य है।)

इन उदाहरणों के आधार पर इतना तो निश्चित कहा ही जा सकता है कि कवि गुणी व्यक्ति था। चाहे वह बहुपठित न रहा हो, पर बहुश्रुत व्यक्ति तो था ही, इसमें कोई सन्देह नहीं। इनके अनेक सोरठों का स्वरूप दीर्घ परम्परा से चली आती हुई सूक्तियों के आधार पर निर्मित हुआ है। वस्तु चयन की दृष्टि से चाहे हमें कृपाराम की कल्पना में मौलिकता न जान पड़े, किन्तु अभिव्यक्ति की सरलता और सचोट स्पष्टता की दृष्टि से इनकी रचनायें विशिष्ट हैं। इनकी कविता के आधार पर कहा जा सकता है कि संस्कृत का अच्छा ज्ञान होना चाहिए। अनेक स्थलों पर कवि ने स्थानीय उपमाओं और वातावरण का सफल प्रयोग किया है। यथा—

कारज सरै न कोय, बल प्राक्रम हीमत बिना।
हलकारयाँ की होय, रंग्या स्यालाँ राजिया ॥

(बल, पराक्रम और हिम्मत के बिना कोई काम पूरा नहीं हो सकता। हे राजिया! रंगे सियारों को हिम्मत दिलाने से क्या हो सकता है?)

रोटी चरखो राम, इतरो मुतलब आर रो।
को डोकरियाँ काम राजकथा सूं राजिया ॥

(बुढ़ियाओं को रोटी, चरखा और राम नाम से मतलब होना चाहिए। हे राजिया! राजनीति से इन्हें क्या लेना देना है?)

इन उदाहरणों में स्पष्टता, संक्षिप्तता और सरलता आदि गुण निहित हैं। कवि ने 'वयण सगाई' का बड़ी सफलता पूर्वक पालन किया है। उसका 'वयण सगाई' के प्रति कट्टरता से 'कविता के अर्थ में कोई जटिलता नहीं आई और न कवि को शब्दों को तोड़ मरोड़ कर ही काम में लेना पड़ा है। कवि की यह एक बहुत बड़ी विशेषता ही कही जायेगी, कि उसने अति-प्रचलित शब्दों के शुद्ध स्वरूप के माध्यम से अपनी बात सरलता से कह दी है। सीधी रेखा खींचना बड़ा टेढ़ा काम है। यह जन साधारण के लिए संभव नहीं होता। केवल चतुर चितेरा ही रेखाओं पर इतना नियन्त्रण रख पाता है। इसी प्रकार सीधे-सादे शब्दों में अपनी गहरी बात कह देना, साधारण कवि से नहीं हो सकता। उसे प्रतिभा सम्पन्न होना ही पड़ेगा। हमारे कवि कृपाराम भी ऐसे ही एक शारदा के प्रतिभा पुत्र थे। सहृदय, निपुण और लोकप्रिय कवि!

आछा जुध अणपार, धार खगां सनमुख धसी।
भोगी सो भरतार, रसा जिके नर राजिया ॥२०॥

दान न होय उदास, मतलब गुण गाहक मिनख।
ओखदरो फड़वास, रोगी गिणे न राजिया ॥२१॥

गह भरियो गजराज, महपर वह आपह मतै।
कूकरिया बेकाज, भुसै किन राजिया ॥२२॥

असली री औलाद, खून करयां न करै खता।
वाहै वद वद वाद, गोढ दुलातां राजिया ॥२३॥

इणही सूं अवदात, कहणी सोच विचार कर।
वे मौसर री बात, रूड़ी लगे न राजिया ॥२४।

विन मतलब विन भेद, केई पटक्या राम का।
खोटी कहै निखेद, रामत करता राजिया ॥२५॥

पल पल में कर प्यार, पल पल में पलटै परा।
ऐ मतलब रा यार, रजपुत लायक राजिया ॥२६॥

सार तथा अण सार, थेट्ट गळ्ळ वधियो थकी।
वडां सरम री मार, रान्यां सरै न राजिया ॥२७॥

पहली किया उपाव, दव दुसमण आमय दटै।
प्रबळ हुवां घाव, रोभा घाले राजिया ॥२८॥

एक जतन सत एह, कूकर कुगंध कुमाणसां।
छेड़ म लीजे छेह, रैवण दीजे राजिया ॥२९॥

नरां नखत परवांण, ज्यां ऊभां संके जगत।
भोजन वदे न भांण, रावण मरतां राजिया ॥३०॥

हिम्मत किम्मत होय, बिन हिम्मत किम्मत नहीं ।
करे न आदर कोय, रद कागद रो राजिया ॥३१॥
देखे नहीं कदास, नहचे कर कुनफो नफो ।
रोल्यांरा इकलास, रो मनावे गांजिया ॥३२॥
कूड़ां कूड़ प्रकास, अण हूती मेले इसी ।
उडती रहै अकास, रजी न लागे राजिया ॥३३॥
उपजावे अनुराग, कोयल मन हरखत करै ।
कड़वो लागै काग, रसना रा गुण राजिया ॥३४॥
भली बुरी री भीत, नह आणे मनमें निलज ।
निलजी सदा नचीत, रहै सयाणा राजिया ॥३५॥
ऐम अमल आराम, सुख उछाह मेल्या सयण ।
होका बिना हरांम, रंग रो हुवे न राजिया ॥३६॥
कठण पड़े जद काम, हांम पकड़ ठाडो रहै ।
तो अलबत ही राम, राम भली हूँ राजिया ॥३७॥
मद विद्या धन मांन, ओछा सो भकळे अवट ।
आघण रे उनमांन, रैवै विरला राजिया ॥३८॥
पय मीठा कर पाक, जो इमरत सींचीजिये ।
उर कड़वाई आक, रंच न मूके राजिया ॥३९॥
तुरत बिगाड़े ताड़, पर गुण स्वाद स्वरूप नैं ।
मिनखांही पर मांड, रिगल खराई राजिया ॥४०॥
सर देखे संसार, निपट करे गाहक निजर ।
जांचे जाणणहार, रतनां पारख राजिया ॥४१॥

चालें जठै चलंत, श्रण चालियां आवै नहीं ।
दुनियां में दरसंत, जीस सु लोचन राजिया ॥८६॥
सवळा सपट पाट, करंता नह राखे कसर ।
निवलां एक निराट, राजतणां वळ राजिया ॥८७॥
प्रभुता मेरु प्रमांण, आप रहै रजकण इमा ।
जिके पुरुप घन जांण, रविमंडल विच राजिया ॥८८॥
लाखां तीतर लार, हर कोई हाका करे ।
सींहांतणी शिकार, रमणी मुसकल राजिया ॥८९॥
मुतलब सूं मनवार, नोत जिमावै चूरमा ।
विण मतलब मनवार, राब न पावे राजिया ॥९०॥
मूसा नें मंजार, हित कर बैठा हेकठा ।
सह जांणे संसार, रस नह रहसी राजिया ॥९१॥
मन सूं भगड़े मोर, परलां सू भगड़े पछे ।
त्यांरा घटे न तौर, राज कचेड़ी राजिया ॥९२॥
माम धरम धर साच, चाकर जेही चालसी ।
ऊनी ज्यांने आंच, रती न आवे राजिया ॥९३॥
बंध बंध्या छुड़ जाय, कारज मनचित्या करे ।
कहो चीज है काय, रुपिया सरखी राजिया ॥९४॥
चोर चुगल वाचाळ, ज्यांरी मांनीजे नहीं ।
संपड़ावै घसकाळ, रीती नाड्यां राजिया ॥९५॥
अणही सूं अडियोह, मदगाळो करि माढवा ।
पारसरुल पड़ियोह, रोयां मिलैन राजिया ॥९६॥

खळ गुल अणखूंताय, एक भाव कर आदरै ।
वे नगरी हूंताय, रोही आछी राजिया ॥९७॥

भिडियो धर भाराथ, गड्डी कर कर राखै गढां ।
ज्यूं कालो सिरनाथ, रांकन छाई राजिया ॥९८॥

आंगुण गारा और, दुखदाई सारी दुनी ।
चोदू चाकर चोर, रांघे छाति राजिया ॥९९॥

बांकापणो विसाल, वसको यूं घण वेखने ।
वीजतणो ससिथाल, रसाग्रमांयों राजिया ॥१००॥

रावरंक धन और, सूर धीर गुणवान सठ ।
जाततणो नह जोर, रात तणो गुण राजिया ॥१०१॥

वसुधा वल च्योपाय, जोयो सह कर कर जुगत ।
जात समार न जाय, रोक्यां धोक्यां राजिया ॥१०२॥

अरहट कूप तमांम, ऊमर लग न हुवै इती ।
जलहर एकी जाम, रेले सब जग राजिया ॥१०३॥

नां नारी नां नाह, अद विचला दीसे अपत ।
कारज सरै न काह, रांडोलां सूं राजिया ॥१०४॥

समझनैं व्यावार, वेजामत आगे वधे ।
समक कीरतो सार, रँग छै ज्यानै राजिया ॥१०५॥

विरकपाय अनत्वाय, मोहपाय अलसाय मति ।
जनम इळथाय जाय, राम भजन विन राजिया ॥१०६॥

जिण विणरो सुख जोय, नितचें दुख कहणो नहीं ।
काढन दे वितकोय, रींरायां सूं राजिया ॥१०७॥

जका जठी जिमजाय, आ शेज्यां हूंता इला ।
ऐ मृग सिरदे ग्राय, रीझ न जांणे राजिया ॥१०८॥

रिगल तणां दिन रात, थल करतां सायब थक्यो ।
जाय पयो जत जात, राजसिरचांमुख राजिया ॥१०९॥

नारी नहीं निघात, चाहीजै मेदग चतुर ।
बातांही में बात, रींज खीज में राजिया ॥११०॥

क्यों न भजे करतार, सांचेमन करणी सहत ।
सारोही संसार, रचना झूठी राजिया ॥१११॥

घण घण साच वधाय, नहफूटै पाहड़ निवड़ ।
जड़ कोमल भिदजाय, राय पड़ै जद राजिया ॥११२॥

जगत करै जिमणार, स्वारथरै ऊपर सकौ ।
पुनरो फल अणपार, रोटी नह दे राजिया ॥११३॥

हित चित प्रीत हँगाम, महेक वखेरे माढवा ।
करै विधाता काम, रांडां पाळ्या राजिया ॥११४॥

स्यालां संगति पाय, करक चंचेडै केहरी ।
हाय कुंसगत हाय, रीस न आवै राजिया ॥११५॥

धांन नहीं ज्यांधूल, जीमण बलउ जिमाड़िये ।
मांहि अंस नहिंमूल, रजपूतीरो राजिया ॥११६॥

कै जहुरी कविराज, नग मांणस परखै नहीं ।
काच कृपण बेकाज, रुलिया सेवे राजिया ॥११७॥

आछा है उमराव, हयाफूट ठाकुर हुवै ।
जडिया लोह जड़ाव, रतन न फावै राजिया ॥११८॥

खागतणे वलखाय, सिरसाटारो सूरमा ।
ज्यांरो हक रहजाय, राम न माने राजिया ॥११९॥

समझ हीण सरदार, राजी चित क्यांसूं रहै ।
भूमितणां भरतार, रींझै गुण सूं राजिया ॥१२०॥

वचन नृपति अविवेक, सुण छोडे सैणामिनख ।
अपत हुवां तरएक, रहेन पंछी राजिया ॥१२१॥

जिणरो अनजल खाय, खल तिणसूं खोटी करै ।
जड़ांमूल सूं जाय राम न राखे राजिया ॥१२२॥

आछोड़ां ढिग आय, यों आछा मेला हुवै ।
ज्यूं सागर में जाय, रलै नदीजल राजिया ॥१२३॥

सूदन

सूदन ने चरित्र चित्रण में अन्य कवियों की अपेक्षा अधिक उदार दृष्टि से काम लिया है। उसने अपने आश्रयदाता के ऐश्वर्य, वैभव और गुणों का सुन्दर वर्णन करने के साथ ही प्रतिपक्षियों का भी उतना ही उत्तम वर्णन किया है। चरित्र चित्रण में उसने प्रायः ऐतिहासिक परम्परा का ही अनुकरण किया है। पात्रों के युद्ध-कौशल को अंकित करने की ओर उनकी कुछ अधिक प्रवृत्ति रही है, किन्तु अवसर मिलने पर करुणा, रति आदि भावनाओं को चित्रण करके पात्रों के गुण दोषों के विस्तृत क्षेत्र को अपनाने का भी उसने प्रयत्न किया है।

डा० टीकमसिंह तोमर

सूदन

शिवाजी के प्रति जो सेवा भूषण द्वारा की गई, वैसी ही सेवा सूदन ने भरतपुर के महापराक्रमी शासक सूरजमल के प्रति की। सूदन के आश्रयदाता भरतपुर नरेश सूरजमल अथवा सुजानसिंह एक पराक्रमी, साहसी, कुशलयोद्धा और आदर्श चरित्र थे। इतिहासकारों ने एक स्वर से उनके महत कार्यों और पराक्रमों का उल्लेख किया है, उनके नीति कौशल और राजप्रबंध की मुक्त कंठ से प्रशंसा की है। बूंदी के प्रसिद्ध कवि वीररसावतार सूर्यमल्ल मिश्रण ने भी उनकी प्रशसा में कविता लिखी है - पर ये सब मिलकर भी जो नहीं कर सके, उसे सूदन कर गये है। सूदन ने अपने आश्रयदाता के जीवन के लगभग नौ वर्षो को आधार बना कर एक बृहद्‌ाकार काव्य ग्रंथ का प्रणयन किया है, जो 'सुजान-चरित्र'' के नामसे प्रसिद्ध है। इस ऐतिहासिक काव्य में सूरजमल के सवत् १८०२ से १८१० तक के युद्धों का विस्तृत वर्णन है। ग्रन्थ सात जंगो में विभक्त है काव्यों को सदैव सर्गों में बाँटा जाता रहा है। 'सुजान-चरित' भी सात सर्गों में विभाजित है। युद्ध कौशल और वीर रस को मुख्य आधार बनाकर लिखीजाने वाली कृति मे सर्गों को सूदन की प्रतिभा ने एक नई संज्ञा दी 'जंग'। यह नवीन उद्‌भावना जहाँ एक ओर कवि की मौलिकता पर प्रकाश डालती है वहाँ दूसरी ओर वह सूदन की परिष्कृत रुचि की भी परिचायक है।

सूदन जाति के माथुर चौबे और मथुरा के निवासी थे। इनके पिता का नाम बसंत था, जैसा कि इन्होंने स्वयं बताया है।

मथुरा पुर सुभ धाम, माथुर कुल उतपत्ति बर।
पिता बसंत सुनाम, सूदन जानहु सकल कवि॥

—सुजान चरित्र, प्रथम अंग पद ७०

इससे अधिक कोई सूचना हमें प्राप्त नहीं होती कवि के जन्म-मृत्यु, शिक्षा-तथा व्यक्तिगत जीवन के संबंध में हमारी जानकारी अद्यावधि शून्य है। केवल इतना अनुमान लगाया जा सकता है कि ये महाराज सूरजमल के पिता बदनसिंह के समय में दरबार में पहुँच चुके थे। इस अनुमान का आधार इनकी निम्न उक्ति है—

ज्यौं जयसाहि नरेश, करत कृपा नृप देस पै।
त्यौं ब्रजेश बदनेस, करत रहो हम पर कृपा।

हिन्दी के ऐतिहासिक काव्योंमें बहुधा तथ्यों की अधिक चिन्ता नहीं की गई। कवि इतिहासकार नहीं होता, वह काव्य रचता है इतिहास नहीं। अतः तथ्यों व कल्पना का मिश्रण स्वाभाविक ही है, इसीलिए अधिकांश ऐतिहासिक काव्य इतिहास से काफी दूर की चीज रहे हैं। किन्तु सूदन का 'सुजानचरित' ऐतिहासिक महत्त्व रखता है। यद्यपि 'सुजान चरित्र' में दी हुई अनेक तिथियाँ इतिहास सम्मत नहीं हैं, किन्तु पात्र सभी ऐतिहासिक हैं। इस प्रकार यह ग्रंथ ऐतिहासिक दृष्टि से अमूल्य रचना है। वर्णित विषयों का जितना विस्तृत और तथ्यपूर्ण वर्णन इस ग्रन्थ में मिलता है, उतना अन्यत्र नहीं।

सूदन एक अति प्रतिभाशाली कवि थे; पर ऐसा लगता है कि उनकी प्रतिभा परम्परापालन के आग्रह के कारण बन्दी हो गयी हो। सूदन बहुज्ञ थे, ओज और नाद-सौंदर्य के समर्थ स्वामी थे और युद्ध

कला के जानकार थे। उनका ज्ञान अतिविस्तृत, अभिव्यंजना स्पष्ट और उपयुक्त भाषा प्रसंगानुकूल चलती थी। परन्तु दुर्भाग्य से ऐसे प्रतिभाशाली कवि ने केशव जैसे कवि को शायद अपना आदर्श माना अपनी बहुज्ञता-प्रदर्शन के लोभ में उन्होंने दीर्घ सूचियों की सृष्टि की नाना प्रकार की वस्तुओं की दीर्घ सूचियाँ, व्यक्तियों की नामावली रचना में नीरसता पैदा कर देती है। साथ ही उन्होंने स्थान स्थान पर छन्द मे परिवर्तन कर दिया है। छंदों में शीघ्रता से परिवर्तन करने के कारण ग्रंथ की शैली मे रोचकता का समावेश हो गया है वहाँ दूसरी ओर इस प्रवाह में थोड़ी बाधा भी आई है।

सूदन की भाषा ब्रजभाषा है किन्तु अन्य भाषाओं का प्रभाव भी स्थान २ पर तीव्र पड़ता है। सूदन ने सयुक्ताक्षर और नादात्मक शैली का उपयोग ओज के लिये किया है ऐसा करने में वे डिंगल अपना गये हैं इनके अधिकांश कवित्तों तथा सवैयों मे ब्रजभाषा निखर आयी है, वहाँ भुजंगी, कड़खा, भुजंगप्रयात छंदो में डिंगल के रूप घुस आये हैं। इनकी ब्रजभाषा, पजाबी, राजस्थानी, बैंसवाड़ी पूर्वी तथा उर्दू से यथावसर मिश्रित होती चली है, मुहावरों का प्रयोग कवि ने बड़ी चतुरता से किया है, और उसमें वह सफल रहा है। सूदन की सर्वग्राही प्रवृत्ति ने देशज शब्दों का भी भरपूर उपयोग किया है। और एक स्थान पर तो उसने विविध भाषाओं का प्रयोग कर रचना में अद्भुत चमत्कार उत्पन्न कर दिया है। इस संबंध में दिल्ली की लूट वाला वर्णन द्रष्टव्य है। नाना देश की स्त्रियों का विविध भाषाओं में विलाप बड़ा मनोरंजक हो गया है, पर साथ में कृत्रिम भी।

परम्परा पालन में जहाँ कवि को एक ओर दीर्घसूचियाँ रचने नादसौंदर्य को महत्व देने और अनुप्रास तथा अन्य अलंकारों का उपयोग अधिकाधिक करने की प्रेरणा दी वहीं दूसरी ओर चमत्कार प्रेम

भी उत्पन्न किया। सूदन के युद्ध-वर्णन परम्परागत होते हुए भी उनमें सजीवता है। मिश्रबन्धु इन्हें वीर रस का 'बढ़िया कवि' मानते हैं और इनकी गणना 'दास' की श्रेणी में करते हैं। इनके वर्णन में युद्ध के पूर्व जो सैनिक तैयारी का जाती है, मोर्चे बांधे जाते हैं, टोह लगाई जाती है और शत्रु सेना पर हमला करने की योजना बनाई जाती हैं, उसका अति विस्तृत और वास्तविक वर्णन है। हिन्दी के अन्य वीर रस के कवियों में सूदन इस दृष्टि से अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। लाला सीताराम, बी० ए० की दृष्टि में इसीलिए सूदन 'पृथ्वीराज रासो' के प्रणेता महाकवि चन्दवरदायी के समकक्ष हैं। शुक्लजी के अनुसार सूदन में युद्ध, उत्साहपूर्ण भाषण, चित्त की उमग आदि वर्णन करने की पूरी प्रतिभा थी।'

'सुजान चरित्र' का अध्ययन करने से पता लगता है कि सूदन रससिद्ध कवि है। वीर, शृंगार, रौद्र, बीभत्स, हास्य, भयानक सभी रसों में कवि को समान सफलता मिली है। शृंगार रस सम्बन्धी कुछेक पद तो इतने अधिक सुन्दर बन पड़े हैं कि लगता है कवि वीर रस का न होकर, शृंगार ही का है। शृंगार के चित्रण में कुछ स्थानों पर कवि असंयत हो गया है और उसकी कविता अश्लीलता को छूने लगती है। ग्रन्थ के आरंभ में दिये गये मंगलाचरण के पद भी इसी प्रकार अन्य पदों की अपेक्षा अधिक सफल बन पड़े है।

सूदन द्वारा किये गये युद्ध-वर्णन संकेत करते हैं कि कवि स्वयं युद्ध स्थान पर रहा हो। 'सुजान चरित' अधूरा ग्रंथ है। सूरजमल के पूर्ण प्रताप और वैभव के समय-ऐसे उपयुक्त प्रसंगो पर कवि के मौन का क्या रहस्य है? कहीं ऐसा तो नहीं हुआ कि कवि स्वयं युद्ध में भाग ले रहा हो, और सरस्वती के इस पुत्र को रणक्षेत्र में वीर गति मिली हो, और परम्परागत विश्वास के अनुसार उसे अप्सराओं ने वरण कर लिया हो।

सूदन

कवित्त

बाप बिष चाखै भैया षटमुख राखै देखि,
आसन मैं राखै बसवास जाकौ अचलै।
भूतनु के छैया आस पास के रखैया,
और काली के नथैया हू के ध्यानहू ते न चले।
बैल बाघ बाहन बसन कौ गयन्द -खाल,
भाँग धौं धतूरे कौ पसार देतु अचलै।
घर को हवालु यहै संकर की बाल कहै,
लाज रहै कैसे पूत मोदक कौ मचलै॥ १॥

दोहा

ठारासौरु पचोतरा, पूस मास सित पच्छ
श्री सुजान विक्रम कियौ, ताहि सुनौ नर दच्छ॥ २॥

छन्द अरिल्ल

बहुत दिना बीते निज देसहिं। तबहीं दूत कह्यौ संदेसहिं॥
दिल्लीपति बकसी इहि देसहिं। आवत तुम सौं करन कलेसहिं॥
सहस तीस असवार संग गनि। पैदल पील फौज बहुतै भनि॥
औरे तुर्क सहस दस बीसहिं। आवत तुम सौं करि मन रीसहिं॥

अलीकुली, रुस्तमखाँ सगहि। हकीमखाँ कुवरा हित जंगहि ॥
फतेअली औरो बहु मीरन। राजा राउ लयें सग धीरन ॥
इन्द्रनगर दच्छिन दिस कढ़्ढिय। निपट गरूर पूरहिय चढ़्ढिय ॥
कछ दिनतु आवैं मेवातहि। करिहैं तहाँ अधिक उतपातहि ॥
यातें वेगि करौं कछु घातहि। जातें वाकौ होइ निपातहि ॥
अब जो नीक होई सो कीजहि। याहि मारि जग में जस लीजहि ॥
यौं कहि दूत नाइ निज सीसहि। सूरज आइ कह्यौ व्रज ईसहि ॥
तुरक सहस जोरें दस बीसहि। दिल्ली ते निकस्यौ धरि रीसहि ॥
हम सौं जुद्ध करन मन राखतु। महाराज मैं हूं अभिलाषतु ॥
आइस ईस तुम्हारौ पाइय। तौ याकौं कछु हाथ लगाइय ॥
तब ब्रजेश सुनि कैं यह भाषिय। तात मनो मो मन यह राखिय ॥३॥

सोरठा

दिल्ली ते कढ़ि दरि, जब आवै मैदान भुव।
एक झपट करि सूर, याकौ दूर गरूर करि ॥ ४ ॥

दोहा

मतौ मानि बदनेस कौ, सूरज उदित प्रतापु।
आइसु लै असवार ह्वै, करि हरदेव सुजापु ॥ ५ ॥

छन्द पद्धरी

जब चढ्यो सिंह सूरज अमान। बज्जे निसान धनके समान।
पीरे निसान सोभित दिसान। अरि गहन दहन मानहुँ कृसान।

सुंडाल चलत सुंडनि उठाइ। जिनकै जँजीर झनझनत पाइ।
घन घनत घट अरू घुघर-माल। भन भनत भँवर मद पर रसाल।
छन छनत तुरगम सग्ह दार। फन फनत बदन उच्छलत बार।
सनसनत सिमिट जब करत दौर। गुन गिनत सुतिन के कवितु-मौ।
मौहैं अनेक गजगाह चत। चमकंत चारू कलगी अनंत।
झलकत जिरह बखतर नवीन। तमकत वीररस भट प्रवीन।
टमकंत तबल टामक विहद्। ठसकंत टाप बिनु भुवगरद।
ठमकत ढोल दफला अगार। धमकत धरनि धौंसा धुंकार।
खमकत वीर करि कार सुचोप। लमकत तुरगम पाइ पोप।
हमकत चले पाइक अनेक। इक जग रंग जानत विवेक।
कोदंड चड कर कटि निपग। इक चड भुसडी लै तुफग।
इक सेल साँग समसेर चर्म। रनभूमि भेद जानत सुपर्म।
सब चढ़े बड़े उच्छाह पूरि। छपि गयो गगन रवि उडिय धूरि।
चतुरंग चमू सत रङ्ग रूप। सजि चल्यौ सूर सूरज अनूप।६।

दोहा

कूँच कियौ डेरा दियौं, नौगाएँ मेवात।
तरन तनेन तेहसौं, जुद्ध हेत ललचात॥ ७॥

हरगीत छन्द

भूपाल-पालक भूमिपति बदनेस नन्द सुजान हैं।
जाने दिली दल दक्खिनी कीने महाकलिकान हैं।

ताकौ चरित्र कछूक सूदन कह्यौ छंद बनाइ कै।
सजि सैन सूरज चढ़ियौ कहि प्रथम अंक सुनाइ कै।

प्रथम अंक समाप्त

छंद पवंगा

सूरज चारि उपाय प्रवीन सुचित्तई।
साम दाम अरु भेद दंड धरि नित्तई॥
खल के मन की लैन बात करि सीलकी।
बिदा करी समझाइ प्रवीन वकील की॥ १॥
देस काल बल ज्ञान लीम करि हीन है।
स्वामि काम में लीन सुसील कुलीन है॥
बहु विधि बरनै बानि हिये नहि भयरहै।
पर—उर करै उदेग दूत तासौं लहै॥ २॥
खान सलाबत पास वकील सुजाई कै।
करी सलाम कवाद अदाब बजाइ कै॥
नैननु लई सलाम सलाबतखान ने।
कह्यौ कहा कहि बेग सुतोहि सुजान ने॥ ३॥

दोहा

कुंवर बहादुर ने प्रथम तुमकौं कह्यौ सलाम।
फेरि कहीकि नबाब इत, आये हैं किहि काम॥ ४॥

तोटक छंद

रथ ऊँट गयंद मुकाम कियं । तिन संग पदातिनी राखि दियं ।
छ हजार सवार तयार लियं । तिहिं संग सुजान हरष्पि हियं ।
रवि ऊगत वार पयान कियं । हय के असवार न और बियं ।
करलै किरवान निसान दियं । जिहि के समग्गर न और बियं ।
तिहँ वार तुरंगम साजि घनं । असवार भयौ वदनेस तनं ।
रन जीतन कौं मन राखिपनं । करि दुंदभि दीह अवाज घन ।
जब कूंच कियो रस वीर सनं । तब पीत पताकन सोभवनं ।
जनु चन्चल दामिनी सोभघनं । हय टापन सौं कहुँ होत ठनं ।
यह सेनु दरेरनु देती चली । मनु सावन की सरिता उम्हली ।
अहिसैंल मनो मुख काढ़ि रहे । अरु ढालनु कच्छप रूप गहे ।
जल जोरि तुरंगम देखि रहे । जनु मीन जहाँ भुजदेह लहे ।
द्र ा ज्यों द्रुम ढाहति आवत है । इम सैन नदीसु कहावत है ।
दस कोस सुभूमहिं पीठि दियं । तिहिं थान मुकाम सुजान लियं ।
निस एक बसे परभात भयौं । तब आयसु सिंह सुजान दयौं ॥१०॥

सोरठा

है नवाब दस कोस, कोस पाँच औरौं चलैं ।
दिखा दिखी कैं जोस, रोस भरे लरि हैं भले ॥११॥
यौं कहि सिंह सुजान, पाँच कोसकौ कूँच करि ।
चौकीकरी अमान, सहस सहस असवार की ॥१२॥

छन्द पद्धरी

सरदार सुगोकुलराम गौर। जिहि संग सहस हय करत दौर।
तसु अनुज सु सुरतिराम सग। सत चार तुरीत्र लेत जंग।
सत पाँच तुगी कूरम प्रताप। सँग लियें जुद्ध पर बल उथाप।
अरू एक सहस बलिराम बीर। हय हांकि हँकारत समर धीर।
सत चारि बाजि स्यौंसिंह धीर। इक सथ्य हत्य बल करि गँभीर।
एक सहस बाजि कीने सनाह। वह धीर बीर महमद पनाह।
सत वेद किक्यानतु सहित जोर। रन भूमि सिंह राना कठोर।
सत एक हयंदनु लै उदग्ग। हरिनारायन जिहिं प्रबल खग्ग।
इहि भाँति और बलवान जोध। सब सत्रु हेत हिय धरत क्रोध।
इनके सुगोल किय चारि चंड। खल खडन तिनको बल अखंड।
इनतैं जु अरथ निजु राखिसथ्थ। जे हथ्थियनिहुं सौं करत हथ्थ।
इहि भाँति पाँच चौकी बनाइ। यह कह्यौ बचन तिनसौं सुनाइ।
तुम जाइ चहूँ दिसी तें मग्द। परबलहिं घेरि दीजै दग्द।
जहँ म्वान पान पावैं न जान। अरू जुद्ध बार सब सन्निधान।१३।

दोहा

ऐसें बचन सुजान के, सबै सुभट उरधारि।
बकसी की तकसी करन, चले सेल पटतारि॥ १४॥

छन्द भुजंगप्रयात

चहूँ ओर धाए धरा धूमधारें। धमंकें धरे पाइ दंदै हँकारें।
सबै ओर तें धाइ के धूमधारी। सुनें सैद की फौज ने भीतिधारी।
हुते फौज ते बाहरे ते डराने। कुल स्त्री लगें ज्यौं पराए पियाने।
किहूँ धाइकै धाइकै पील लीने। किहूँ फील पाठे पटकि हाथ छीनें।
किहूँ छैल ने बैल लै गैलचाही। किहूँ लै तुरी कौं घनी सैन गाही।

कहूँ फील फँले मनो हैं घटाए। मुसु डीन सौं मारि काहू
भए सद के लोग सब्बे इकट्टे । मनो सिंह को संकसौं।रो
तहीं सोर वाढ्यों कहें जट्ट आए। करो सावधानी रहो ठौ
सबै सैदकी फौज यों खलभलानी लगे आगिके ज्यौं उठै औ
करी दौरि काहू सुनी आपबकसी। लगी एक ही वाग्हीमें ध
घरी एक में चेत ह्वै वीर बोल्यौ। घणी वार लौं आपनो सीस
करो बेकरी बेगही सावधानी। बुलाओ नकीबो नहीं वातमा

दोहा

तब नकीब सौं यों कियौं, हुकुम सलावतखान।
तोब वान अरू रहकला, चौकस करो दमान ॥१
कटक बीच में राखिकै, इनसे यह कहि देउ।
आप आपने मोरचा, सब चौकस करि लेउ ॥१९
लायदार रक्खो किये, सबै अरावौ एहु।
ज्यौं हरीफ आवैनजरि, तबै धड़ाधड़ देहु ॥१८
सबही सूरज के सुभट, निकट मचावो दुन्द।
निकसि सकै नहि एकहू, करयौ कटक मसमुन्द ॥१६

हर गीतछद

भूपाल पालक भूमिपति, बदनेस नन्द सुजान हैं।
आनै दिलीदल दक्खिनी, कीनै महाकलिकान हैं।
ताको चरित्र कलूक खदन, कह्यौ छन्द बनाइ कैं।
बकसीहि वेढ़न सुभट सूरज, दुतिय अङ्कहि धाइ कैं ॥२